श्री मल्लिनाथ पुराण

सम्पादक
मुनि शिवानन्द

कृति	:	श्री मल्लिनाथ पुराण
कृतिकार	:	आचार्य श्री सकलकीर्ति जी
मंगलाशीष	:	श्वेतपिच्छाचार्य श्री 108 विद्यानंद जी मुनिराज
शुभाशीष	:	आचार्य श्री 108 वसुनन्दी जी मुनिराज
सम्पादक	:	मुनि शिवानंद
सह सम्पादक	:	मुनि प्रशमानंद
प्रतियाँ	:	1000
संस्करण	:	प्रथम 2016
प्रकाशक	:	निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला समिति, दिल्ली (रजि.)
मुद्रक	:	अरिहंत ग्रॉफिक्स, 2736, गली नं. 6, रघुवरपुरा नं. 2, गांधी नगर, दिल्ली – 110031 मो. 9958819046, 9811021402
प्राप्ति स्थान	:	अतिशय क्षेत्र जय शांतिसागर निकेतन, मण्डोला, गाजियाबाद, उ.प्र.
	:	श्री जम्बूस्वामी तपोस्थली ग्राम बौलखेड़ा (राज.)
	:	श्री दिगम्बर जैन लाल मन्दिर चाँदनी चौक, दिल्ली

शुभाशीष

अनादिकाल से प्राणी में आत्मकल्याण की जिज्ञासा चिरंजीवी रही है। उस जिज्ञासा का समाधान अनेकों आचार्यों, श्रमणों, मुनियों, भगवंतों एवं सन्तों ने समय- समय पर विभिन्न भाषाओं, विभिन्न सिद्धान्तों एवं व्याख्याओं के रूप में दिया है। कथाओं के माध्यम से आत्मकल्याण की प्रेरणा देने वाली परम्परा अद्यतन उतनी ही महत्वपूर्ण रही है जितनी पुरातन युग में थी। इतिहास अर्वाचीन या प्राचीन यह सदैव रोचक बोधवर्द्धक एवं शुभप्रेरक ही होता है। जिनशासन में कथा साहित्य का विपुल भण्डार उपलब्ध है। कहा जाता है कि विश्व के समस्त कथा साहित्य को एकत्र कर दिया जावे तब भी जिनशासन के प्रथमानुयोग की बराबरी नहीं कर सकता। जिनशासन में असंख्यात वर्ष पहले से होने वाली महापुरुषों की प्रामाणिक कथा आज भी उपलब्ध है। प्रत्येक काल में होने वाले 24 तीर्थंकर, 24 कामदेव, 12 चक्रवर्ती, 9 नारायण, 9 प्रतिनारायण, 9 बलभद्र, 14 कुलकर, 9 नारद एवं 11 रुद्रों की कथाएं पाप-पुण्य का नीर-क्षीरवत् सुस्पष्ट वर्णन करने वाली हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ 'श्री मल्लिनाथ पुराण' वर्तमान कालीन तीर्थंकरों की शृंखला में द्वितीय बाल ब्रह्मचारी 19वें तीर्थंकर का जीवन वृत्त है। आचार्य भगवन् श्री सकलकीर्ति महाराज ने अत्यन्त सहज, सरल एवं बोधगम्य शैली में शब्दावलम्बन लेते हुए लिप्यासन पर टंकोत्कीर्णवत् अंकित कर दिया है। आचार्य महोदय ने केवल वर्तमान भव की ही नहीं अपितु पूर्व के दो-तीन भवों का भी संक्षेप में वर्णन किया है। तीर्थंकर प्रकृति के बंध की कारणभूत 16 कारण भावनाओं का वर्णन चित्ताकर्षक रूप में प्रस्तुत है तथा पंचकल्याणकों का जीवन्त वर्णन प्रस्तुत किया है। इसे पढ़ते समय सहज ही वह दृश्य चित्तपटल पर प्रस्तुत हो जाता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के सम्पादन में एवं पाण्डुलिपि संशोधन में युगल मुनिराज श्री शिवानन्द जी एवं श्री प्रशमानंद जी का प्रमुख योगदान रहा है एतदर्थ प्रति नमोऽस्तु पूर्वक समाधिरस्तु शुभाशीष। अपने न्यायोपार्जित धन का सदुपयोग करने वाले बड़ौत के सुधी श्रावक को भी शुभाशीष। आशा है सभी पाठकगण हंसवत गुणग्राही दृष्टि बनाकर आद्योपांत स्वाध्याय कर आत्मकल्याण करेंगे।

इत्यलम्

सर्वेषां मंगलं भवतु   जैनं जयतु शासनं   धर्मोवर्द्धताम्

श्री शुभमिति-चैत्र कृ. 6   जिनचरणानुचर: संयमानुरक्त:

अनुराधा नक्षत्र, 29 मार्च, 2016   कश्चिदल्पज्ञ: पापभीरू: निर्ग्रन्थ सूरि

स्थान - नेहरू रोड़, बड़ौत (बागपत)   ॐ ह्रीं नम:

वि.सं. 2072, वी.नि.सं. 2542

सम्पादकीय

श्री जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रणीत जिनागम चार अनुयोगों में विभक्त है, जिस प्रकार गाय के चारों स्तनों में दूध समान वर्ण, शक्ति, स्वाद, स्पर्श व उपयोगिता से युक्त होता है उसी प्रकार पुष्प की चार पंखुडी की तरह ही प्रथमानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग एवं द्रव्यानुयोग ये जिनवाणी के चार अनुयोग हैं। जिनवाणी का प्रत्येक शब्द प्राणी मात्र का कल्याण करने में समर्थ है, यदि हम उस शब्द का सही अर्थ समझने का प्रयास करें तो जैन दर्शन में सभी कथन सापेक्ष हैं, निरपेक्ष कथन तो अकल्याणकारी ही होता है। जिन वचन ही समस्त भव रोगों के लिए परमौषधि के समान है। इन्हीं का (जिन वचनों का) समीचीन आश्रय/अवलम्बन भव्य जीवों को भव वारिधि से तारने के लिए समुचित व समर्थ नौका के समान है। जिन वचनों की महिमा के बारे में आचार्य भगवन् श्री कुन्दकुन्द स्वामी जी कहते हैं–

जिण वयण मोसह मिणं, विसय सुह विरेयणं अमिद भूयं।
जर मरण वाहि हरणं, खय करणं सव्व दुक्खाणं।।17।।द.पा.

जिनेन्द्र भगवान के वचन रूपी यह औषधि विषय सुखों का विरेचन करने वाली तथा अमृतभूत है। जन्म, जरा, मृत्यु रूपी रोगों की परिहारक एवं सर्वदुखों का क्षय करने वाली है। उस परमौषधि का सेवन हमें अपनी पात्रता के अनुसार करना है। जिस प्रकार कुशल वैद्य रोगी की वय, रोग, शक्ति, प्रकृति, मौसम का प्रभाव देखकर, औषधि की मात्रा, सेवन की विधि व पथ्यापथ्य की बातों का समीचीन विचार करके ही रोगी को औषधि का सेवन कराता है। उसी प्रकार परम पूज्य श्री दिगम्बर जैनाचार्य रूपी कुशल वैद्यों के निर्देशानुसार हम सभी को भी क्रमश: जिनागम का स्वाध्याय करना है तभी हम जन्म, जरा, मृत्यु जैसे रोगों से मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। यदि हमने कुशल वैद्य के निर्देशों व सुझावों की उपेक्षा करके स्वेच्छाचारितापूर्वक (मनमाने ढंग से) औषधि का सेवन किया तो हो सकता है रोग नष्ट होने की बजाय बढ़ भी सकता है तथा साथ में अन्य भी कई रोग पैदा हो सकते हैं। अत: जिनागम (जिनेन्द्र भगवान या आप्त प्रणीत, गणधर भगवन्तों द्वारा संग्रहित एवं दिगम्बर मुनियों द्वारा लिपिबद्ध शास्त्रों को ही जिनागम कहते हैं) का प्रत्येक, अक्षर, शब्द, पद, वाक्य श्रद्धान के योग्य हैं। जिनवाणी का कोई भी अंश/अंग उपेक्षणीय नहीं है। आचार्य भगवन् श्री शिवकोटि महाराज कहते हैं–

पदमक्खरं च एक्कंपि जो ण रोचेदि सु णिद्दिट्ठं।
सेसं रोचंतो वि हू मिच्छा दिट्ठी मुणेयव्वा।। मूलाराधना।।

जो जिनागम में प्रणीत एक भी अक्षर, शब्द, वाक्य या गाथा की श्रद्धा न करे और समस्त

आगम को माने या उस पर श्रद्धा करे तो भी वह मिथ्या दृष्टि है अत: कोई भी अनुयोग कभी अकल्याणकारी नहीं होता अपनी पात्रता के अनुसार सभी का स्वाध्याय करना चाहिए।

प्रथमानुयोग के ग्रंथों में त्रेसठ शलाका के महापुरुषों का जीवन चरित्र दर्शाया गया है 'उन्होंने जीवन में जो शुभाशुभ क्रियायें कीं, पुण्य पाप का बंध किया उसका क्या फल प्राप्त हुआ' का वर्णन है एवं कर्म सिद्धान्त को प्रत्यक्ष दूरदर्शन (चलचित्र) पर चल रहे चित्रों की तरह दिखाया गया है। प्रथमानुयोग के शास्त्रों का प्रारम्भिक दशा में (स्वाध्याय के क्रम में) स्वाध्याय अत्यन्त आवश्यक है। इस अनुयोग का स्वाध्याय करने से पापों से भीति, जिनेन्द्र भगवान में प्रीति, सच्चे देव, शास्त्र, गुरु व जिनधर्म में अनुराग व रुचि, संयम प्राप्ति की प्रबल भावना, संसार शरीर भोगों से उदासीनता/विरक्ति, रत्नत्रय में अनुरक्ति की भावना जागृत होती है। आचार्य भगवन् समन्तभद्र स्वामी जी कहते हैं–

प्रथमानुयोगमर्थाख्यानं चरितं पुराणमपि पुण्यम्।
बोधि समाधि निधानं बोधति बोध: समीचीनं॥43॥ र.श्रा.

प्रथमानुयोग पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादक है। पुराण/पौराणिक पुरुषों के पुण्य चरित्र का कथन करता है यह बोधि (रत्नत्रय-सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र) एवं समाधि (निर्विकल्प ध्यान की अवस्था-जो अभेद रत्नत्रय के प्राप्त होने पर शुद्धोपयोगी मुनि के आत्मा में लीन होने पर प्राप्त होती है जिसे आत्मानुभूति भी कहते हैं इसका प्रारंभ सातवें अप्रमत्त गुणस्थान से होता है इसके पूर्व शुद्ध आत्मा की प्रत्यक्षानुभूति कदापि संभव नहीं है अर्थात् असंभव है) का खजाना है ऐसे समीचीन बोध को देने वाला प्रथमानुयोग/कथानक है अपितु उनमें श्रावक धर्म व मुनि धर्म का कथन करने वाला चरणानुयोग भी उपलब्ध होता है। गुणस्थानों, मार्गणा स्थानों, दस प्रकार के कारणों एवं त्रिलोक संबंधी कथन होने से करणानुयोग, जीव की स्थिति तथा जीवादि द्रव्यों के स्वभाव, शुद्ध गुण, पर्याय का कथन भी प्रथमानुयोग में मिलने से द्रव्यानुयोग भी दृष्टिगोचर होता है। प्रथमानुयोग में भी संक्षेप रूप से चारों अनुयोगों का कथन मिल जाता है ऐसा कहना भी कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

स्वाध्याय से विमुख या एकान्तवाद की पंक में लिप्त जो अज्ञ महानुभाव प्रथमानुयोग को कथा कहानी कहकर उसकी उपेक्षा करते हैं वे अपने जीवन के साथ खिलवाड़ तो करते ही हैं साथ ही जिनागम की अवहेलना कर अन्य भव्य जीवों के पतन में भी कारणरूप से सहभागी हो जाते हैं।

अत: मन्द कषायी, भद्र परिणामी, प्रशम, संवेग भावयुक्त उन समस्त स्वाध्याय प्रेमी, सत् श्रद्धालु धर्मस्नेही, आत्महितेच्छुक, पाप भीरू महानुभावों के लिए विनम्र सुझाव/निर्देश है कि वे जिनेन्द्र भगवान की वाणी का अपलाप करके पाप के भागीदार न बनें, अपितु समीचीन शास्त्रों

का समीचीन विधि से स्वाध्याय करके स्वपर के कल्याण में सहयोगी बनें। सम्यक्ज्ञान रूपी नेत्र के बिना जीव कभी भी अपना कल्याण नहीं कर सकता है अतः यथाशक्ति नित्य विनयपूर्वक विशुद्ध भावों से स्वाध्याय करने का समीचीन प्रयास करें।

इस ग्रंथ के पुनः प्रकाशन का उद्देश्य यही है कि अधिक से अधिक भव्य जीव स्वाध्याय के लिए प्रेरित हों। वर्तमान में स्वाध्याय की परम्परा मंद होती चली जा रही है क्योंकि जो स्वाध्याय करना चाहते हैं वे (प्रारम्भिक स्वाध्यायार्थी) बड़े ग्रंथों को देखकर ही अपना साहस खो बैठते हैं तथा प्रथमानुयोग के ग्रंथ सर्वत्र सहज सुलभ भी नहीं हो पा रहे हैं। अधिकांशतः एकान्तवाद से दूषित साहित्य दृष्टिगोचर हो रहा है जिससे प्राणी मिथ्यात्व रूपी अंधकार में भटकते हुए भव भ्रमण की वृद्धि ही कर रहे है। अतः प्रथमानुयोग के लघु शास्त्रों का प्रकाशन इस युग की आवश्यकता की पूर्ति में सहयोगी सिद्ध होगा।

इस ग्रंथ के सम्पादन में मुझ अल्पज्ञ साधक के द्वारा जो त्रुटि रह गई हो तो सकल संयमी विज्ञजन मुझे क्षमा करते हुए भूल सुधारने हेतु संकेत देने का कष्ट करें, इसमें जो त्रुटि हैं वे मेरी अल्पज्ञता की द्योतक हैं तथा जो भी अच्छाई हैं वे सब परम पूज्य आचार्य भगवन्तों का सुप्रसाद ही है। अतः गुणग्राही बन कर गुण ग्रहण करें।

''अलमति विस्तरेण

ॐ ह्रीं नमः

तिथि-29 मार्च, 2016 — गुरु चरण रज
चैत्र कृ. 6, अनुराधा नक्षत्र — बाल मुनि शिवानंद
स्थान-नेहरू रोड, बड़ौत (बागपत)
वी.नि.सं. 2542, वि.सं.-2072

श्री मल्लिनाथ पुराण

भाषाकार का मंगलाचरण

सर्वविघ्न हर्ता प्रभु मल्लिनाथ जिनराज।
जिन मंगल कारण नमूं धारि माथ पद आज॥1॥
ज्ञान योग तप लीन नित रहितपरिग्रह धीर।
विषयवासनाविमुख गुरु मेटो मम भवपीर॥2॥
बन्दूँ वाणी भगवती स्याद्वादमय शुद्ध।
जा प्रसादतें होत हैं भव्यजीव प्रतिबुद्ध॥3॥

ग्रन्थकार का मंगलाचरण

नमः श्रीमल्लिनाथाय कर्ममल्लविनाशिने।
अनन्तमहिमाप्ताय त्रिजगस्वामिनेऽनिशम्॥1॥
शेषान् सर्वान् जिनान्वन्दे धर्मचक्रप्रवर्तकान्।
विश्वभव्यहितोद्युक्तान् पंचकल्याणनायकान्॥2॥
गुणाष्टकमयान् सिद्धांस्त्रैलोक्याग्रनिवासिनः।
ध्येयान् मुन्यादिभव्यौघैः स्मरामि हृदये सदा॥3॥
आर्हती भारती पूज्या लोकालोकप्रदीपिका।
रजोविधूयने नित्यं तनोतु विपुलं मतिं॥4॥
आचार्यान् पाठकान् साधून् गुरुनाचारतत्परान्॥
श्रुताब्धीन् शिरसा वन्दे सर्वांश्च योगसाधकान्॥5॥
रत्नत्रयं नमस्कृत्य कर्मघ्नं शर्मसागरं।
रत्नत्रयविधानस्य फलसूचनहेतवे॥6॥
मल्लिनाथ जिनेन्द्रस्य चरित्रं पावनं परं।
समासेन प्रवक्ष्यामि स्वान्ययोर्हितसिद्धये॥7॥

जिनका जीतना बड़े क्लेश से हो सकता है, ऐसे ज्ञानावरण आदि कर्मरूपी मल्लों को जड़ से नष्ट करने वाले, अनन्तविज्ञान, अनन्तवीर्य, अनन्तसौख्य एवं अनन्तदर्शन स्वरूप अनन्त चतुष्टय

महिमा के धारक एवं तीन लोक के स्वामी भगवान मल्लिनाथ को मैं ग्रन्थकार **(श्रीसकलकीर्ति भट्टारक)** सदा मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ।।1।। भगवान मल्लिनाथ से जो ऋषभ आदि तीर्थंकर हैं, उन्हें भी मैं ग्रन्थ की आदि में मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ, क्योंकि वे समस्त तीर्थंकर भी भगवान मल्लिनाथ के ही सदृश धर्मचक्र के प्रवर्तन करने वाले हैं। मोक्षाभिलाषी समस्त जीवों को हितकारी मार्ग मोक्षमार्ग में लगाने वाले हैं एवं गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान एवं निर्वाण–इन पाँचों कल्याणों के नायक हैं।।2।। ज्ञानावरण-दर्शनावरण आदि घातिया-अघातिया कर्मों के नाश से प्राप्त सम्यक्त्व आदि आठों गुणों के स्वामी, तीन लोक के अग्रभाग में विराजने वाले एवं मोक्षाभिलाषी भव्यजीव सदा जिनकी आनन्दमयी मूर्ति का ध्यान करते हैं, उन सिद्ध भगवान का मैं भी अपने हृदय में स्मरण करता हूँ।।3।। लोक एवं आलोक को स्पष्ट रूप से प्रकाशित करने वाली एवं भगवान अरहन्त की दिव्य ध्वनि से प्रकाशमान **भगवती सरस्वती की** भी मैं ग्रन्थ की आदि में अभिवन्दना करता हूँ तथा उनसे विनयपूर्वक यह प्रार्थना करता हूँ कि वह विघ्नों के नाश करने में सदा मेरी बुद्धि को प्रबल तथा निर्मल बनावें।।4।। ग्रन्थ की आदि में आचार्य, उपाध्याय तथा सर्व साधुओं को भी मेरा मस्तक झुकाकर नमस्कार है; क्योंकि ये पवित्रात्म का, ज्ञानाचार आदि आचारों के आचरण करने वाले हैं–आगम के समुद्र हैं तथा ध्यान के धारण में प्रवीण हैं।।5।। समस्त कर्मों का नाश करने वाले तथा अनेक प्रकार के कल्याणकों के समुद्र उस सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र स्वरूप रत्नत्रय को भी मैं प्रणाम करता हूँ तथा हृदय में यह पूरी अभिलाषा रखता हूँ कि वह कल्याणकारी रत्नत्रय मुझे भी प्राप्त हो।।6।। इस प्रकार कल्याण के कर्ता समस्त इष्ट देवों को भक्तिपूर्वक नमस्कार कर मैं उन्नीसवें तीर्थंकर भगवान मल्लिनाथ के चरित्र का संक्षेप में वर्णन करता हूँ जो कि अत्यन्त पवित्र है तथा अपना एवं पराया हित सिद्ध करने वाला है।।7।।

इसी जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में धर्म का समुद्र अर्थात् जहाँ पर सदा वास्तविक धर्म की प्रवृत्ति रहती है, ऐसा **कच्छकावती** नाम का प्रसिद्ध देश है।।8।। इस कच्छकावती देश के गाँव, खेट, पत्तन, पुर, मटम्ब आदि में जगह-जगह जिन-मन्दिर शोभायमान है एवं मोक्षाभिलाषी धर्मात्मा लोगों के निवास स्थान बने हुए हैं–उनसे यह देश अत्यन्त मनोहर जान पड़ता है।।9।। इसी कच्छकावती देश के महामनोहर अविनाशी ऊँचे एवं नाना प्रकार के फलों से शोभायमान उद्यानों एवं वनों में जगह-जगह मुनिराज दीख पड़ते हैं जो कि घोर परीषहों के सहने में परम धीर-वीर हैं एवं सदा ध्यान में लवलीन हैं।10।। इसी कच्छकावती देश में असंख्यात भगवान जिनेन्द्र उत्पन्न होते हैं। असंख्यात ही चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण एवं कामदेव उत्पन्न होते हैं, जिनकी बड़े-बड़े देव पूजा एवं सत्कार करते हैं।।11।। इस कच्छकावती देश में केवल एक जैन धर्म ही की प्रवृत्ति रहती है जो सदा दयास्वरूप है, यति एवं श्रावकों की विद्यमानता से जो शाश्वत है–सदाकाल विद्यमान रहता है एवं सारभूत है, किन्तु जैन-धर्म के सिवाय अन्य किसी धर्म की

इस देश में प्रवृत्ति नहीं रहती।।12।। इस कच्छकावती देश में मोक्षाभिलाषी जीवों को धर्म का उपदेश सुनाने के लिए सदा मुनिगण, गणधर एवं केवलियों का विहार होता रहता है। कुलिंगी अथवा मिथ्यात्वी साधुओं का यहाँ पर विहार नहीं होता।।13।। इस देश में जहाँ देखो वहाँ ग्राम एवं नगर आदि में ऊँचे-ऊँचे जिन-मन्दिर ही दीख पड़ते हैं, मिथ्यादृष्टि देवों के मन्दिर कहीं भी दिखलाई नहीं पड़ते।।14।। इस देश में भगवान जिनेन्द्र के धर्म में सदा लवलीन क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र–तीनों वर्णों की प्रजा निवास करती है, यह प्रजा भगवान जिनेन्द्र एवं गुरुओं में सदा श्रद्धालु है एवं सदा उत्तम आचरण को करने वाली है।।15।। इस देश में जहाँ सुनो वहाँ पर भगवान जिनेन्द्र द्वारा प्रतिपादित बारह अंग एवं चौदह पूर्व की सत्पुरुषों के द्वारा सुनने में आते एवं पढ़े जाते हैं, मिथ्या शास्त्रों का वहाँ पर सुनना एवं पढ़ना नजर नहीं आता।।16।। विशेष क्या? इस देश में उत्पन्न होने वाले महानुभाव जप, तप, व्रत एवं दान आदि के द्वारा सुलभ रूप से न प्राप्त होने वाले स्वर्ग एवं मोक्ष को भी प्राप्त कर लेते हैं, तब इससे अधिक उसकी कीर्ति का क्या वर्णन हो सकता है।।17।।

इस प्रकार के उत्तम वर्ण के धारक एवं समीचीन धर्म एवं उत्तमोत्तम कुलों के स्थान उस कच्छकावती देश में एक **वीतशोका नाम की नगरी** है जो कि अपनी शोभा से देवपुरी–स्वर्ग समान जान पड़ती है।।18।। विस्तीर्ण खाईयाँ, मनोहर ऊँचे-ऊँचे परकोट सदर दरवाजे एवं तोरणों (वन्दनमालाओं) से वह नगर अत्यन्त शोभित होता है, सो ऐसा जान पड़ता है मानों देवी एवं समुद्र से वेष्टित यह जम्बूद्वीप ही है।।19।। उत्तमोत्तम धनिकों की अटारियों के अग्रभाग में लगी हुई एवं पवन के झकोरों से दोलायमान जो ध्वजायें हैं वे ही उठे हुए हाथ, (उनसे ऐसा जान पड़ता था) मानों उस नगर की भूमि देवों को यह जतलाकर बुला रही है कि भाई देवों! यदि तुम्हें अपने निजस्थान स्वर्ग से मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है तो तुम यहाँ से उसे प्राप्त करो। अतएव वह नगर अत्यन्त शोभायमान जान पड़ता था।।20।। उस नगर में यह बड़े ही आनन्द की बात थी कि बहुत से दानी पुरुष आहार की बेला के समय मुनियों को आहारदान देने के लिए अपने-अपने गृहों के द्वार देखते थे अर्थात् द्वारापेक्षण करते थे एवं कोई-कोई मुनिरूप महापात्र (उत्तम पात्र) को भक्तिपूर्वक उत्तमदान देते थे।।21।। किन्हीं-किन्हीं पुण्यात्मओं के गृह में इस दान से अर्जित पुण्य से रत्नों की वर्षा होती थी एवं कोई-कोई पुरुष सत्पात्र को न पाकर दु:खित हो पश्चाताप भी करते थे।।22।। इस वीतशोका नगर में दिव्यरूप से धारक स्त्री-पुरुषों के जोड़े जिस समय में जिन-मन्दिरों में भगवान जिनेन्द्र की पूजा में संलग्न होते थे, उस समय वे देव-देवियों के जोड़े सरीखे जान पड़ते थे।।23।। धर्म की खान के सदृश उस नगर की ऊँची-ऊँची एवं सुवर्णमयी जिन-मन्दिरों की श्रेणियाँ अपने मणिमयी तोरणों से ऊँचे-ऊँचे मणिमयी प्रतिबिम्बों से दैदीप्यमान रत्नमयी उपकरणों से गीत नृत्य-वाद्य एवं स्तवनों से स्त्रियों एवं उत्तमोत्तम पुरुषों से अत्यन्त शोभायमान जान पड़ती थीं।।24-25।। विशेष क्या? धर्म की खान स्वरूप उस नगर में मोक्ष की

प्राप्ति के लिए बड़े-बड़े ऋद्धि के धारक इन्द्र भी जन्म धारण करने की अभिलाषा करते थे, इसलिए उस नगर का जितना भी अधिक वर्णन किया जाये थोड़ा है।।26।।

इस प्रकार उत्तम वर्ण के धारक एवं धर्म के प्रधान कारण उस वीतशोका नगर में एक **वैश्रवण नाम का राजा था** जो कि अत्यन्त प्रतापी होने पर भी धर्मात्मा था। कमनीय रूप एवं लावण्य से महामनोहर वस्त्र एवं भूषणों से एवं दानशीलता एवं व्रतोपासना से वह राजा अत्यन्त शोभायमान था तथा इंद्र के सदृश परम नीतिवान था। प्रधानरूप से वह प्रजाओं के कल्याण का करने वाला था। सदा न्यायमार्ग का अनुसरण करने वाला था, महान था। समस्त शत्रुओं का विजेता एवं चतुर था तथा अपने राज्य का सुचारू रूप से पालन करता था। उस वैश्रवण राजा को यह सदा ध्यान रहता था कि धर्म से धन की प्राप्ति होती है। धन से काम पुरुषार्थ सिद्ध होता है एवं क्रम से मोक्ष पुरुषार्थ की सिद्धि होती है, ऐसा मानकर वह सदा धर्मध्यान में लीन रहता था। वह शीलवान, नरपाल, प्रतिदिन दान-पूजा आदि को करता था। वह समस्त **अष्टमी एवं चतुर्दशी पर्वों** में उपवास रखता था एवं श्रावकों के समस्त व्रतों का वह अच्छी तरह पालन करता था।।27-31।। पुण्य-कर्म के उदय से राजा वैश्रवण को अत्यन्त सुख देने वाली राज्य लक्ष्मी प्राप्त थी जो कि पवित्र कामों में व्यय होने वाली थी, सारभूत थी एवं दासी के सदृश राज वैश्रवण की सदा आज्ञाकारिणी थी।।32।।

कदाचित् दैदीप्यमान मुकुट से जिनका मस्तक दैदीप्यमान था, ऐसे राजा वैश्रवण अपनी राजसभा में राजसिंहासन पर विराजमान थे कि उसी समय पुष्पों को हाथ में लेकर अत्यन्त हर्ष से भरा वनपाल राजसभा में आया एवं इस प्रकार निवेदन करने लगा।।33।।

हे देव! महामनोहर चन्दन वन में मुनिराज **सुगुप्त आकर विराजमान हैं**, वे मुनिराज साधारण मुनिराज नहीं, समस्त मुनियों में श्रेष्ठ हैं। मनोगुप्ति, वचनगुप्ति एवं कायगुप्ति-इन तीनों गुप्तियों से उनकी आत्मा विभूषित है। वे अवधिज्ञानरूपी नेत्र के धारक हैं, समस्त परिग्रह के त्यागी हैं, गुणरूप सम्पत्ति के धारक हैं तथा 'मोक्ष प्राप्त करने वाले भव्यप्राणी समीचीन ज्ञान प्राप्त करें, अर्थात्-संसार में जो पदार्थ सारभूत हैं उनकी ओर झुकें, यही समझाने के लिए वे विशेषरूप से ध्यान एवं अध्ययन में अत्यन्त लीन हैं।।34-35।। वनपाल के मुख से परमानन्द देने वाला समाचार सुन राजा वैश्रवण की आत्मा मारे आनंद के गद्‌गद् हो गई। वह आनन्द से पुलकित हो शीघ्र ही राजसिंहासन से उठा। जिस पवित्र दिशा के अन्दर मुनिराज सुगुप्त विराजमान थे, वह सात पेंड उस दिशा की ओर गया एवं बड़ी भक्ति के साथ उस दिशा में साष्टांग नमस्कार किया।।36।। मुनिराज के दर्शनों की शीघ्र उत्कण्ठा से उसने शीघ्र ही नगर में आनन्द भेरी बजवाई। अपने सर्व कुटुम्बी जनों को इक्ट्ठा किया एवं धर्मोपदेश की अभिलाषा से मुनिराज सुगुप्त के पूजनार्थ वह शीघ्र ही चन्दन वन में पहुँच गया।।37।। हितकारी मार्ग के उपदेश देने वाले, समस्त परिग्रह के त्यागी, गुणों के समुद्र एवं पूज्य मुनिराज सुगुप्त एक विशाल शिला पर विराजमान थे। राजा

वैश्रवण शीघ्र ही उनके समीप जा पहुँचा, तीन प्रदक्षिणा दीं। अपने परिवार के साथ उत्तमोत्तम सामग्री से मुनिराज के चरणकमलों की भक्तिपूर्वक पूजा की एवं पूजा के अन्त में उन्हें मस्तक झुकाकर प्रणाम किया।।38-39।। मुनिराज लौकिक शिष्टाचार के विशेष ज्ञाता थे, इसलिए उन्होंने–'हे समस्त कल्याण के स्थान राजन्! मोक्षलक्ष्मी को प्रदान करने वाली तुम्हारी निरन्तर धर्मवृद्धि हो', यह आशीर्वाद दिया।।40।। राजा वैश्रवण को इस प्रकार अपने लिए धर्मवृद्धि का सूचक मुनिराज का वचन सुनकर यथार्थ धर्म के जानने की इच्छा प्रकट हो गई, इसलिए प्रणामपूर्वक उसने मुनिराज से यह निवेदन किया।।41।।

भगवन्! आप ने जो मुझे धर्म वृद्धिस्वरूप आशीर्वाद दिया है, मैं नहीं समझता कि वह धर्म क्या है, कौन उसे प्राप्त कर सकता है एवं क्या उसका फल है? इसलिए आप के ही श्रीमुख से मुझे उस धर्म की प्राप्ति के उपायों की एवं उसके फल जानने की इच्छा हुई है।।42।। कृपानाथ! जिस प्रकार रात्रि का प्रबल अन्धकार बिना सूर्य के प्रकाश के नष्ट नहीं होता, उसी प्रकार मेरे अन्दर भी धर्म के विषय में जो संशय है अज्ञान अन्धकार है, वह भी आप के वचनरूपी सूर्य के बिना मिट नहीं सकता।।43।। राजा वैश्रवण की इस प्रकार उत्कट धर्म-जिज्ञासा सुन मुनिराज ने कहा–'राजन्! तुम्हारे अभीष्ट पदार्थ की सिद्धि हो, इसलिए मैं संक्षेप में धर्म का व्याख्यान करता हूँ, तुम चित्त को एकाग्र कर ध्यानपूर्वक सुनो'–

यह संसार अपार है एवं इसमें अगणित अनेक प्रकार का दुःख है। इस अगणित संसार के दुःख से मुक्त कर जो योगियों को अनन्त सुखस्वरूप मोक्ष में ले जा कर रखे अर्थात् परमानन्दमय सुख का रसास्वादन करावे उसी को, हे राजन्! वास्तविक धर्म कहा गया।।44-45।। इस धर्म की कृपा से जिनकी सेवा करने में बड़े-बड़े चक्रवर्ती आदि भी खड़े रहते हैं तथा इसी संसार में आश्चर्यकारी उत्तमोत्तम सुखों को प्रदान करते हैं, ऐसे उत्तमोत्तम भोग तथा भाँति-भाँति की सम्पदाएँ प्राप्त होती हैं, परभव में जिसे समस्त देव मस्तक झुकाकर नमस्कार करते हैं तथा जो दिव्यपद माना जाता है, ऐसा वह इन्द्रपद भी धर्म की कृपा से प्राप्त होता है एवं अहमिन्द्र पद भी, जो अत्यन्त दुर्लभ है–दूसरे उपाय से नहीं प्राप्त किया जा सकता–वह भी इस पवित्र धर्म की कृपा से सुलभ रूप से प्राप्त हो जाता है।।46।। धर्मात्मा लोग धर्म के द्वारा तीनों लोक के समस्त ऐश्वर्यों को पाकर कालक्रम से मोक्ष को प्राप्त करते हैं, जिसमें कि अविनाशी सुख की प्राप्ति होती है। व्यवहार तथा निश्चय के भेद से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र दो-दो प्रकार के हैं। गृहस्थों के व्यवहार सम्यग्दर्शन आदि होते हैं तथा निश्चय सम्यग्दर्शन आदि संयमी मुनियों के ही होते हैं। जिस धर्म का ऊपर उल्लेख किया गया है, वह धर्म व्यवहार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र से भी प्राप्त होता है तथा संयमी पुरुषों को निश्चय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र से प्राप्त होता है, अर्थात् व्यवहार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र भी धर्म माना जाता है तथा निश्चय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र भी धर्म माना जाता

है।।48-49।। व्यवहार सम्यग्दर्शनादि का स्वरूप इस प्रकार है।

जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा तथा मोक्ष—इन सात तत्त्वों का भगवान जिनेन्द्र का, उनके आगम का एवं उत्तम तप के भंडार गुरुओं का जो यथार्थ रूप से श्रद्धान करना है, उसे व्यवहार सम्यग्दर्शन माना है। इस सम्यग्दर्शन के नि:शंकितादि आठ अंग हैं तथा उनका स्वरूप यह है—जिन वचन में किसी प्रकार की शंका न करना नि:शंकित अंग है। भोगों के अंदर आकांक्षा न रखना नि:कांक्षित अंग है। मुनि आदि के शरीर में रोगादिक के कारण दुर्गन्धि उत्पन्न हो जाने पर भी किसी प्रकार की घृणा का न करना निर्विचिकित्सित अंग है। लोकाचार के अंदर जो भी मिथ्यादृष्टियों के साथ मूढ़ता का व्यवहार है उसका न होना अमूढ़दृष्टि नाम का अंग है। असमर्थ अज्ञानी मनुष्य भगवान जिनेन्द्र द्वारा प्रतिपादित सन्मार्ग में यदि किसी प्रकार के दोष लगावें तो उन दोषों को आच्छादित कर देना ढँक देना, उपगूहन अंग है। किसी कारणवश कोई धर्मात्मा धर्म से चलायमान हो जाय तो उन्हें मृदुवाणी से समझा-बुझा कर एवं अन्य किसी उपाय से पुन: ज्यों का त्यों धर्म में स्थिर कर देना स्थितिकरण अंग है। जैन धर्म के धारकों में अत्यन्त प्रेम का रखना वात्सल्य अंग है तथा किसी भी उत्तम उपाय से भगवान जिनेन्द्र के शासन का माहात्म्य प्रगट करना आठवाँ अंग प्रभावना कहा जाता है।।50-54।। भगवान **समन्तभद्राचार्य** ने इन अंगों का स्वरूप रत्नकरण्ड श्रावकाचार में इस प्रकार कहा है—

'भगवान जिनेन्द्र ने वस्तु का जो स्वरूप कहा है, वह वहीं है तथा उसी प्रकार का है, अन्य नहीं है तथा न अन्य प्रकार का है, इस प्रकार निश्चल तीक्ष्ण खड्ग की धारा के सदृश जो सन्मार्ग श्रेष्ठ मार्ग में संशय रहित निश्चल रूप से रुचि का होना है, वह सम्यग्दर्शन का पहिला अंग नि:शंकित नाम का है। कर्मों की क्षायोपशमिक आदि अवस्थाओं के आधीन होने के कारण जो सुख कर्माधीन हैं, विनाशीक है तथा सदा जिसका उदय दु:ख से मिश्रित है, ऐसे पाप के कारण सुख में जो किसी प्रकार के विश्वास का न रखना है अर्थात् ऐहित विषयवासना जनित सुख में जो किसी प्रकार लालसा नहीं रखना है, वह दूसरा नि:कांक्षित अंग है। रक्त, मांस आदि निन्दित धातु-उपधातुओं का स्थान होने से स्वभाव से अपवित्र भी रत्नत्रय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्‌चारित्र से पवित्र अर्थात् स्वभाव से निन्दित भी सम्यग्‌र्शन आदि से पवित्र मुनियों के शरीर में किसी प्रकार की घृणा न कर जो उनके गुणों में प्रीति करना है, वह तीसरा निर्विचिकित्सित अंग है। मिथ्यामार्ग दु:खों को देने वाला है तथा उसके अनुगामी किसी प्रकार के उत्तम मार्ग पर चलने वाले नहीं, इसलिए जब कभी उस मिथ्या मार्ग एवं मिथ्या मार्ग पर चलने वालों की प्रशंसा का अवसर प्राप्त हो उस समय अपनी ओर से किसी प्रकार से सम्मति नहीं देना, न सम्बन्ध रखना एवं न उनके चक्कर में आकर किसी प्रकार की प्रशंसा करना, चौथा अमूढ़दृष्टि अंग है। यद्यपि भगवान जिनेन्द्र द्वारा बतलाया गया मार्ग स्वयं शुद्ध है तथापि अत्यन्त कठिन होने से धारण न कर सकने के कारण यदि कोई अज्ञानी तथा असतर्क पुरुष उसकी निन्दा कर बैठे तो किसी भी उपाय

से उस निन्दा को दूर करना–निन्दा न होने देना, पाँचवाँ उपगूहन अंग है। किसी भी तीव्र दुःख आदि कारणों से धर्मात्मा मनुष्यों की परिणति सम्यग्दर्शन वा सम्यक्चारित्र से चल-विचल हो उठी हो एवं वे उनसे विमुख रहना चाहते हों तो वास्तविक जैन शास्त्र के ज्ञानियों का जो फिर से उन धर्मात्माओं की सम्यग्दर्शन तथा सम्यक्चारित्र के अन्दर दृढ़ कर देना है, वह छठा स्थितिकरण अंग है। अपने साधर्मी भ्राताओं का जो हृदय में उत्तम भाव रखकर निश्चलरूप से यथायोग्य आदर-सत्कार करना है, वह सातवाँ वात्सल्य अंग है तथा संसार में जो बहुलरूप से अज्ञान अन्धकार फैल रहा है, उसे यथायोग्य किसी न किसी उपाय से दूर कर जो भगवान जिनेन्द्र के शासन का माहात्म्य प्रकट करना है, वह प्रभावना अंग कहा जाता है। इन आठ अंगों के पालक अञ्जन चोर आदि महापुरुषों ने अनुपम फल प्राप्त किया है एवं इन अंगों का माहात्म्य वर्णन करते-करते यहाँ तक कहा गया है कि जिस प्रकार एक भी अक्षर की कमी रखने वाला मन्त्र विष की वेदना को दूर नहीं कर सकता, उसी प्रकार इन आठ अंगों में एक भी अंग से रहित सम्यग्दर्शन भी जन्म की सन्तति को नष्ट नहीं कर सकता।'

ग्रन्थकार सम्यग्दर्शन की महिमा दिखलाते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार बलवान राजा शत्रुओं के समूह को भी देखते-देखते ही तितर-बितर कर नष्ट कर देता है उसी प्रकार सारभूत एवं उत्कृष्ट जिन आठ अंगों का ऊपर वर्णन किया गया है, उनसे युक्त सम्यग्दर्शन जिस समय बलवान हो जाता है, उस समय वह क्षण भर में कर्म रूप बैरियों को जड़ से उखाड़ कर दूर फेंक देता है।।55।। भगवान जिनेन्द्र ने सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र का मूल कारण सम्यग्दर्शन को ही कहा है, क्योंकि बिना सम्यग्दर्शन के वे मिथ्याज्ञान तथा मिथ्याचारित्र का मूल कारण सम्यग्दर्शन को ही मोक्षरूपी अनुपम महल की पहली सीढ़ी एवं धर्म का बीज बतलाया गया है। ग्रन्थकर सम्यग्दर्शन के लिए यहाँ तक अपने पवित्र भाव प्रगट करते हैं कि जिस महानुभाव पुरुष ने सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर लिया है, वही पुरुष मोक्षमार्ग में स्थित है एवं वही तीन लोक की लक्ष्मी का भोगने वाला है, ऐसा मैं मानता हूँ तथा जिस महापुरुष के हृदय में अमूल्य सम्यग्दर्शनरूपी रत्न विराजमान हैं, वही महानुभाव इहलोक एवं परलोक में विद्वानों की दृष्टि में महा धनवान है। उससे बढ़कर अन्य कोई धनवान नहीं।।56-58।। धन तो केवल इसी लोक में सुख एवं दुःख का देनेवाला है, परन्तु सम्यग्दर्शनरूपी चिन्तामणि रत्न ऐसा है, जिससे तीनों लोग में सुख ही सुख मिलता है। सम्यग्दर्शन से श्रेष्ठ न तो कोई संसार मैं बंधु है एवं न सदा हित करने वाला स्वामी है, क्योंकि यह सम्यग्दर्शन जीवों को स्वर्ग एवं मोक्ष के सुखों का प्रदान करने वाला है, समस्त पापों का जड़ से नाश करने वाला एवं धर्म को प्राप्त कराने वाला है।।59-60।। इसलिए ग्रन्थकार इस बात पर बल देते हैं कि जीवों को चाहिए कि ऐसे परम उपकारी एवं सर्वदा हितकारी सम्यग्दर्शन को सबसे पहले प्राप्त करें, क्योंकि इस सम्यग्दर्शन की सामर्थ्य से मुक्तिरूपी लक्ष्मी वश हो जाती है तथा मिथ्यात्व की सन्तान को जड़ से उखाड़ कर यही सम्यग्दर्शन तीर्थंकर आदि

की अनुपम विभूति को प्रदान करता है।

जिस ज्ञान के द्वारा जीवादि पदार्थ, आगम एवं गुरुओं का यथार्थ रूप से जानना (ज्ञान) होता है तथा यह देव है तथा यह कुदेव है—इस बात की भी अच्छी तरह पहचान होती है, वह व्यवहार नाम का सम्यग्ज्ञान है तथा व्यञ्जनोर्जित 1. अर्थसमग्र 2. शब्दार्थोभयपूर्ण 3. कालाध्ययन 4. उपाध्यानसमृद्धक 5. विनय, 6. गुर्वाद्यनपह्नव 7. एवं बहुमानसमृद्धक 8— ये आठ प्रकार के आचार माने हैं। जहाँ पर शब्द एवं अर्थ दोनों का सूचन हो, वह 'शब्दार्थोभयपूर्ण' नाम का आचार है। जहाँ पर शुद्ध अक्षरों का निरूपण है वह व्यञ्जनोर्जित नाम का आचार माना है। जहाँ पर शुद्ध अर्थ का प्रतिपादन हो वह अर्थ समग्र नाम का आचार है, जहाँ पर समस्तकाल अध्ययन का निषेध हो, अर्थात्—जहाँ पर नियत समय में अध्ययन का प्रतिपादन हो, वह 'कालाध्ययन' नाम का आचार है। जहाँ पर तप आचरण के साथ-साथ अध्ययन का विधान हो, वह 'उपाध्यानसमृद्धक' नाम का आचार है। जहाँ पर विनयपूर्वक पाठ का पढ़ना हो, वह 'विनय' नाम का आचार है। जहाँ पर अपने गुरु आदि की कीर्ति का गान किया जाय वह 'गुर्वाद्यनपह्नव' नाम का आचार है एवं जहाँ पर गुरु आदि की स्तुति तथा पूजा आदि का समारोह हो, वह 'बहुमानसमृद्धक' नाम का आठवाँ आचार भेद है। विद्वानों के द्वारा इन आठ प्रकार के आचारों के साथ जो ज्ञान पढ़ा जाय, वह ''ज्ञानाचार' कहा जाता है। यह ज्ञानाचार समस्त संसार का प्रकाश करने वाला दीपक है एवं मोक्ष को प्रदान करने वाला है।।62-67।। इस सम्यग्ज्ञान के द्वारा ही समस्त संसार का ज्ञान होता है। कौन तत्त्व हितकारी है एवं कौन अहितकारी है? यह पता भी इसी ज्ञान से लगता है। यह पदार्थ त्यागने योग्य है एवं यह पदार्थ नहीं त्यागने योग्य है, यह बात भी ज्ञान ही बतलाता है तथा यह बन्ध तत्त्व है, यह मोक्ष तत्त्व है, यह धर्म है, यह पाप है, यह कृत्य है, यह अकृत्य है, देव, गुरु एवं शास्त्र का स्वरूप यह है—सम्यग्ज्ञान कहा जाता है। पात्र को दान देना 'दान' एवं कुपात्र को दान देना कुदान कहलाता है तथा आत्मा का स्वरूप चैतन्य है, यह सब बात भी सम्यग्ज्ञान के द्वारा ही प्रगट होती है।।68-69।। भगवान जिनेन्द्र ने लोक एवं आलोक के देखने में बाह्य अंतरंग तत्त्वों के परखने के लिए ज्ञान को ही नेत्र कहा है, जिसके यह ज्ञानरूपी नेत्र नहीं हैं, वह इस संसार में सर्वथा अंधा ही है—केवल नेत्रों के रहते वह सूझता नहीं कहा जा सकता।।70।। मछलियों के बाँधने के लिए जिस प्रकार जाल रहता है, उसी प्रकार स्पर्शन आदि पाँचों इन्द्रियाँ मछलियाँ हैं एवं उनके बाँधने के लिए यह सम्यग्ज्ञान जाल है, अर्थात् पाँचों इन्द्रियों का दमन सिवाय सम्यग्ज्ञान के दूसरे से नहीं हो सकता तथा जिस प्रकार गजराजों के विघात करने के लिए सिंह समर्थ होता है, उसी प्रकार कामरूपी मदोन्मत्त गजराज को सर्वथा नष्ट करने वाला यह सम्यग्ज्ञान ही बलवान सिंह है।।71।। यह संसारी जीवों का मन बन्दर के सदृश अत्यन्त चंचल है अर्थात् बंदर की जिस प्रकार प्रतिक्षण क्रिया होती रहती है, उसी प्रकार इस मन की भी प्रतिक्षण क्रिया होती रहती है एवं उससे निरन्तर कर्मबन्ध होता रहता है, उस मनरूपी बन्दर को बाँधने के लिए यह

सम्यग्ज्ञान पाश है तथा जिस प्रकार सूर्य समस्त अन्धकार को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार समस्त अज्ञानरूप अन्धकार को नष्ट करने के लिए भी यह सम्यग्ज्ञान प्रखर सूर्य है।।72।। मूल में शुभ एवं अशुभ के भेद से कर्म दो प्रकार का माना है, उसके फल का भोग ज्ञानी भी करते हैं एवं अज्ञानी भी करते हैं, परन्तु आश्चर्य इस बात का है कि समान रूप से भोग करने पर भी अज्ञानी के तो कर्मों का बन्ध होता है एवं ज्ञानी के कर्मों की निर्जरा होती है तथा अन्य भी विलक्षण बात यह है कि तीव्र तप तपने पर भी जिस कर्म को अज्ञानी जीव करोड़ों भव में खपा सकता है, उसे मनोगुप्ति, वचनगुप्ति एवं कायगुप्ति रूप तीनों गुप्तियों का धारक एवं संवर से भूषित ज्ञानी जीव आधे ही क्षण में मूल से उखाड़ कर फेंक देता है।।73-74।। ग्रन्थकार सम्यग्ज्ञान की सर्वोच्च प्रशंसा करते हुए कहते हैं—यह सम्यग्ज्ञान ऐसा अनुपम मन्त्र है कि इसके द्वारा खिंची हुई मोक्षरूपी स्त्री भी आप-से-आप आकर प्राप्त हो जाती है, फिर अन्य देवांगनाओं की प्राप्ति हो जाना यह तो अत्यधिक सुलभ बात है, इसलिए सम्यग्ज्ञान तत्त्व हमारा परम कल्याणकारी है, ऐसा अच्छी तरह जान कर जो महानुभाव मुमुक्षु है—मोक्ष प्राप्त करने की पूरी-पूरी अभिलाषा रखते हैं—उन्हें चाहिए कि वे निःप्रमादरूप यन्त्र से अर्थात् किसी प्रकार का मन में प्रमाद न रखकर भगवान जिनेन्द्र द्वारा प्रतिपादित विनय आदि रूपी ज्ञान का प्रतिदिन आराधन करें, कभी भी उसे चित्त से न बिसारें।।76।।

मन-वचन-काय की क्रियाओं के द्वारा जो हिंसादि समस्त पापों का त्याग कर देना है, वह व्यवहार चारित्र कहा जाता है। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील एवं परिग्रह—ये पाँच पाप हैं एवं इन पाँचों पापों का त्याग अहिंसा आदि व्रत कहे जाते हैं। उन अहिंसा आदि व्रतों का स्वरूप इस प्रकार है—

समस्त जीवों की रक्षा करना अहिंसा महाव्रत कहा जाता है। झूठ आदि का त्याग करना सत्यमहाव्रत है। चोरी आदि का सर्वथा त्याग अचौर्य महाव्रत है। स्व-स्त्री, पर-स्त्री आदि समस्त स्त्रियों का सर्वथा त्याग कर देना ब्रह्मचर्य महाव्रत है तथा बाह्य आभ्यन्तर समस्त प्रकार के परिग्रह का सर्वथा नाश कर देना आकिंचन्य—निष्परिग्रह महाव्रत है। गुप्ति का अर्थ रक्षा करना है एवं वह मनोगुप्ति, वचनगुप्ति एवं कायगुप्ति के भेद से तीन प्रकार की है। किसी भी पदार्थ में अच्छे-बुरे संकल्पों का होना मन का विषय है, जहाँ पर समस्त संकल्प-विकल्पों का त्याग हो, वह मनोगुप्ति है। सदा मौन रखना वचनगुप्ति है, इसको पालन करने से संवर की प्राप्ति होती है तथा शरीर की समस्त क्रियाओं का अभाव हो जाना अन्त की कायगुप्ति है।।77-81।। जूरा, प्रमाण भूमि को शोध कर चलना ईर्यासमिति है, निर्दोष हितकारी एवं परिमित वचन बोलना भाषा समिति है। जहाँ पर कृत, कारित एवं अनुमोदना से किए गए आहार का त्याग है, आहार में आने वाले अन्तरायों का टालना है तथा उद्गम आदि छियालीस (46) दोषों का रहितपना है, वह एषणा समिति है। पुस्तक, पीछी, कमण्डलु आदि का दयापूर्वक अच्छी तरह देखभाल कर ग्रहण करना तथा रखना

आदान निक्षेपण समिति है तथा नेत्रों से अच्छी तरह देखभाल कर भूमि पर मल-मूत्र आदि का क्षेपण करना प्रतिष्ठापन नाम की समिति है, इसका दूसरा नाम उत्सर्ग भी है। पाँच महाव्रत, तीन गुप्ति तथा पाँच समिति–इस प्रकार यह तेरह प्रकार का चारित्र संसार के समस्त भोगों को प्रदान कर अन्त में मोक्ष सुख प्रदान करने वाला है–परम धर्म का कार्य है तथा निश्चय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र रत्नत्रय का साधक है। इस सम्यक्चारित्र के बिना सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान के अन्दर यह सामर्थ्य नहीं कि वे मोक्ष को प्राप्त करा सकें, इसलिए सम्यक्चारित्र की जितनी भी प्रशंसा की जाय थोड़ी है।।82-87।। ग्रन्थकार सम्यक्चारित्र की वास्तविक प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि सम्यक्चारित्र से युक्त हो एक मुहूर्त ही जीवन रहना अच्छा है, परन्तु उसके बिना करोड़ों वर्ष पर्यंत भी जीवित रहना अच्छा नहीं। अर्थात् सम्यक्चारित्र के बिना जीवन की सफलता नहीं हो सकती, इसलिए जीवन में सफलता पाने के लिए सम्यक्चारित्र सहित मुहूर्तमात्र भी जीवन अच्छा है, परन्तु उसके बिना करोड़ों वर्ष तक भी जीता रहना अच्छा नहीं।।88।। जो महात्मा दृढ़व्रतात्मा हैं अर्थात् जिनकी आत्मा सम्यक्चारित्र के अन्दर दृढ़ हैं, उन महानुभावों को जो कर्म पुरातन है अर्थात् पहले से आत्मा के साथ बन्ध को प्राप्त है, वह हर एक क्षण में नष्ट होता चला जाता है एवं उस महापुरुष की आत्मा के साथ नवीन कर्मों का बन्ध भी नहीं होता, इसलिए धीरे-धीरे समस्त कर्मों के नष्ट हो जाने से उन्हें बहुत जल्दी मोक्षलक्ष्मी का समागम प्राप्त हो जाता है।

जो महानुभाव चारित्ररूपी सिंहासन पर विराजमान हैं, अर्थात् दृढ़रूप से सम्यक्चारित्र को पालता है, उसे बड़े-बड़े इन्द्र आदि भी सेवक की तरह आकर नमस्कार करते हैं, फिर इस सम्यक्चारित्र का जितना भी वर्णन किया जाय थोड़ा है।।90।। जो पुरुष निश्चित रूप से चारित्ररूपी रत्न का धारण करने वाला है, वह इसी संसार में सर्वप्रकार के द्वंद्वों से रहित, अपनी आत्मा से जायमान अगणित सुख का लाभ करता है; ऊर्ध्व, मध्य तथा पाताल लोक के लोग आकर उसे नमस्कार करते हैं, उसकी पूजा अभ्यर्थना करते हैं तथा अत्यन्त सम्मान की दृष्टि से देखते हैं तथा उस सम्यक्चारित्र को पालन करने वाले पुरुषों को परभव में भी महाकल्याण का कर्ता स्वर्ग मोक्ष आदि का सुख निश्चय से प्राप्त होता है।।91-92।। इस प्रकार भिन्न -भिन्न रूप से सम्यग्दर्शन आदि का स्वरूप तथा प्रयोजन बतला कर ग्रन्थकार जब सामान्य रूप से रत्नत्रय की प्रशंसा करते हैं कि यह परमपावन रत्नत्रय जीवों को समस्त प्रकार के कल्याणरूपी फलों का प्रदान करने वाला है। अन्तातीत पुण्य की परम्परा का कारण है एवं इस रत्नत्रय को पालन करने वाले पुरुषों को अविनाशी सुख सागर में मग्न होने का अवसर प्राप्त होता है। इसी अनुपम चमत्कार के धारक रत्नत्रय से जिनकी आत्मा विभूषित है, वे वचन से न कहे जाने वाले सर्वार्थसिद्धि पर्यंत सुख का अच्छी तरह रसास्वादन कर अन्त में अचिंत्य अविनाशी मोक्ष सुख को प्राप्त करते हैं; इसलिए ग्रन्थकार यह तात्विक उपदेश देते हैं कि मोक्षाभिलाषी जीवों! इस प्रकार

रत्नत्रय की सर्वोच्च महिमा जान कर तुम्हें चाहिए कि तुम सम्यग्दर्शनरूपी हार को शीघ्र ही अपने हृदय में धारण करो, ज्ञानरूपी कुण्डलों को अपने दोनों कानों में पहिनो एवं चारित्ररूपी मुकुट को अपने मस्तक पर धारण करो; क्योंकि ये सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्‌चारित्ररूप तीनों रत्न ही मोक्षरूपी स्त्री के वश करने में कारणभूत हैं, अर्थात् इसी अद्‌भुत रत्नत्रय की कृपा से मोक्षरूपी लक्ष्मी वश होती है, इसी रत्नत्रय की कृपा से तपरूपी लक्ष्मी का भी संचय होता है एवं नाना प्रकार के कर्म मलों से मलिन आत्मा का निर्मलपना भी इसी रत्नत्रय के द्वारा होता है। जिस महानुभाव पुरुष के पास सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्‌चारित्र रूपी निर्मल अलंकार मौजूद है, उसी ज्ञानवान महानुभाव पर मोक्षरूपी स्त्री स्वयं आकर रीझती है एवं जिस प्रकार कोई खास स्त्री खास पुरुष को वरती है, उसी प्रकार मुक्तिरूपी स्त्री भी उसे स्वयं आकर वरती है। किन्तु जिनके पास यह अनुपम रत्नत्रय नहीं, वे कितना भी प्रयत्न करें, मोक्षरूपी स्त्री उनकी ओर ताक कर भी नहीं देखती।।97।। आज तक जिन महानुभावों ने मोक्षरूपी लक्ष्मी को प्राप्त किया है एवं अनादि अनन्त संसार में आगे जाकर उसे प्राप्त करेंगे, वह केवल इसी रत्नरूपी तप की आराधना का फल है—रत्नत्रयरूप तप के आचरण से ही मोक्षलक्ष्मी प्राप्त हो सकती है।।98।। आश्चर्य इस बात का है कि जिस प्रकार निर्बल होने पर भी धनवान पुरुष पर स्त्री आसक्त हो जाती है, उस प्रकार बलवान होने पर भी निर्धन पुरुष पर वह नहीं रीझती, उसी प्रकार कोई जीव कितना भी निर्बल क्यों न हो यदि वह सम्यग्दर्शन आदि रत्नत्रय से विभूषित है—सम्यग्दर्शन आदि रत्न उसके पास हैं तो वह नियम से कालक्रम में मोक्ष को प्राप्त करता है; किन्तु जो पुरुष उक्त रत्नों से रहित है, वह कितना भी विशिष्ट बलवान क्यों न हो, मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकता।।99।। 'समय' शब्द का अर्थ आत्मा भी है एवं शास्त्र भी है एवं ग्रन्थकार रत्नत्रय की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि यह रत्नत्रय ही आत्मा व शास्त्र का सर्वस्व है, अर्थात् आत्मा का सारभाग रत्नत्रय ही है, क्योंकि कर्मरहित अवस्था में स्व-स्वरूप में लीन होता हुआ आत्मा रत्नत्रय के अन्दर ही आकर लीन होता है तथा शास्त्र का सारभाग भी रत्नत्रय है, क्योंकि जिस शास्त्र में रत्नत्रय का वर्णन है, वही शास्त्र सु-शास्त्र है; किन्तु जिसमें रत्नत्रय का वर्णन नहीं वह शास्त्र नहीं, कु-शास्त्र है तथा यही रत्नत्रय सिद्धान्त का प्राण है, क्योंकि सिद्धान्त का अर्थ शास्त्र का निचोड़ भाग है, जो निचोड़ भाग रत्नत्रय स्वरूप न हो, वह सिद्धान्त नहीं हो सकता तथा यह रत्नत्रय ही मोक्षरूपी वृक्ष का उत्पन्न करने वाला बीज है एवं मोक्ष स्थान में ले जाने वाला रत्नत्रय ही उत्तम मार्ग है। इस प्रकार व्यवहार रत्नत्रय का संक्षेप से स्वरूप वर्णन कर राजा **वैश्रवण से मुनिराज सुगुप्त ने कहा**—हे राजन्! ऊपर कही गई रीति के अनुसार व्यवहार रत्नत्रय का स्वरूप अच्छी तरह समझ कर तुम्हें परम धर्म को सिद्धि के लिए अवश्य इस रत्नत्रय को धारण करना चाहिए, क्योंकि यह व्यवहार रत्नत्रय ही संसार में सार पदार्थ है तथा इस व्यवहार रत्नत्रय की पूर्णता के बाद निश्चय रत्नत्रय धारण करना चाहिए। अब हे नरनाथ! मैं निश्चय रत्नत्रय का भी स्वरूप वर्णन करता हूँ, तुम ध्यानपूर्वक

सुनो–क्योंकि सम्यग्दर्शन आदि निश्चय रत्नत्रय साक्षात् मोक्ष का कारण है, समस्त कर्म आदि को मूल से उखाड़ कर नष्ट करने वाला है एवं परमोत्तम है।।100–102।।

अपनी निजी आत्मा ही तीन लोक की नाथ है, अनन्त अविनाशी गुणों की समुद्र है। ध्यान मार्ग से उसका स्वरूप जाना जाता है एवं जिस प्रकार समस्त कर्मों से रहित सिद्धों का स्वरूप शुद्ध है, उसी प्रकार हमारी आत्मा भी शुद्ध है। इस प्रकार अपने अंतरंग परमात्मा में जो श्रद्धान होना है, वह निश्चय सम्यग्दर्शन है। यह निश्चय सम्यग्दर्शन परम उत्कृष्ट है एवं मोक्ष लक्ष्मी का संगम करने वाला है।।103–104।। परमात्मा उत्कृष्ट आत्म ज्ञानस्वरूप है तथा वह लोक एवं आलोक के समस्त पदार्थों का प्रकाश करने वाला है, इस उत्कृष्ट आत्मा को छोड़कर ज्ञान कोई पदार्थ नहीं; किन्तु वह उत्कृष्ट आत्मा ही ज्ञान है, ऐसा विचार कर जो स्व-संवेदन स्वरूप आत्मा का ज्ञान करना है, वही निश्चय सम्यग्ज्ञान है एवं यह निश्चिय सम्यग्ज्ञान केवलज्ञान को प्राप्त कराने वाला है।।105–106।। यह निजात्मा सम्यक्चारित्र स्वरूप है। हलन-चलन आदि क्रिया से रहित होने के कारण स्वभाव से ही निष्क्रिय है। कर्मजनित कालिमा से रहित होने से निरंजन है एवं कर्मों के आवागमन से रहित है। ऐसा वास्तविक रूप से जान कर अंतरंग में ध्यान के द्वारा जो स्वयं अपना आचरण करना है, वह परमाश्चर्यकारी निश्चय चारित्र माना गया है।।107–108।। ग्रन्थकार रत्नत्रय की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि जिस रत्नत्रय का ऊपर वर्णन किया गया है, वह रत्नत्रय बाह्य क्रियाओं की चिन्ता आदि से रहित है, अर्थात् जब तक चित्त में बाह्य क्रियाओं की चिन्ता का समावेश रहेगा, तब तक कभी भी रत्नत्रय का पालन नहीं हो सकता। समस्त प्रकार के राग आदि भावों से रहित है एवं जिस भव में रत्नत्रय की प्राप्ति हुई, उसी भव में वह मोक्ष को प्रदान करने वाला है।।109।। यह निश्चय रत्नत्रय अनन्त कल्याण का प्रदान करने वाला है। ध्यान के द्वारा जाना जाता है, महान मूल्य है तथा वीतरागी मुनियों के ही होता है, रागियों के कभी भी प्राप्त नहीं हो सकता।।110।। जिस प्रकार सूर्य के उदय से प्रगाढ़ अन्धकार भी क्षण भर में तितर-बितर होकर नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार इस संसार में रत्नत्रय का आराधन करने से योगियों के ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय तथा अन्तराय नामक चार घातिया कर्म भी क्षणमात्र में नष्ट हो जाते हैं।।111।।। जो महानुभाव उत्कृष्ट आत्मा परमात्मा का ध्यान करते हैं, उन सबको यह पवित्र रत्नत्रय प्राप्त होता है, इसलिए जो पुरुष इस परम हितकारी रत्नत्रय के वाँछक हैं, उन्हें चाहिए कि वे अवश्य चैतन्यस्वरूप परमात्मा का ध्यान करें, क्योंकि जिस प्रकार अग्नि की तीव्र ज्वाला से अपार काष्ठ भी देखते-देखते राख हो जाता है, उसी प्रकार ध्यानरूपी अग्नि से अनन्त कर्म-पिण्ड भी देखते-देखते भस्म हो जाते हैं। इसलिए हे राजन्! तुम्हारे लिए यह उपदेश है कि तुम मोहरूपी महायोद्धा को नष्ट कर चैतन्य स्वरूप आत्मा के ध्यान के साथ व्यवहार तथा निश्चय के भेद से जो दो प्रकार का रत्नत्रय ऊपर बतलाया है, उसका अवश्य सेवन करो, बिना उसका सेवन किए कभी भी संसार से उद्धार नहीं हो सकता है।।113–114।।

इस प्रकार परिच्छेद के अन्त में ग्रन्थकार प्रेरणा करते हैं कि है आर्यो! मोक्षाभिलाषी सज्जनों! तुम्हें अवश्य प्रयत्नपूर्वक रत्नत्रय का आराधन करना चाहिए; क्योंकि यह रत्नत्रय निरूपम पदार्थ है, कोई भी पदार्थ संसार में इसकी तुलना नहीं कर सकता। धर्मरूपी मनोहर उद्यान का उत्पादक कारण है, क्योंकि रत्नत्रय के सेवन से ही धर्मरूपी आश्रय फलता-फूलता है। जिस प्रकार का अन्धकार मेटने वाला सूर्य है, उसी प्रकार यह रत्नत्रय भी पाप रूपी अन्धकार के नाश करने के लिए सूर्य समान है। दावानल को जिस प्रकार मेघ शान्त कर देता है, उसी प्रकार यह रत्नत्रय दु:खरूपी दावानल को बुझाने वाला है। समस्त प्रकार के दोषों से रहित निर्दोष है। मोक्षाभिलाषी भव्य जीव सदा इसकी सेवा करते हैं एवं असाधारण है, हर एक को प्राप्त नही हो सकता। मैं भगवान मल्लिनाथ को मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ, क्योंकि भगवान मल्लिनाथ समस्त प्रकार के अनर्थों को जड़ से उखाड़ कर फेंकने वाले हैं। उत्कृष्ट प्रयोजन को प्रदान करने वाले हैं, स्वर्ग एवं मोक्ष को देने वाले हैं। उत्कृष्ट हैं, अनन्त गुणों के समुद्र हैं, संसार के समस्त भयों को सर्वथा नष्ट करने वाले हैं। विश्वास के प्रधान कारण हैं एवं आठों कर्मों के जीतने वालों में प्रधान हैं तथा भगवान मल्लिनाथ ने जिस मार्ग का अनुसरण किया है, उसी मार्ग एवं उसी स्वरूप को प्रदान करने वाले सर्वोत्कृष्ट रत्नत्रय को मैं भी मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ; क्योंकि यह रत्नत्रय ही समस्त प्रकार के अनर्थों का सर्वथा नाश करने वाला है; उत्कृष्ट प्रयोजन का उत्पादक है, स्वर्ग एवं मोक्ष को प्रदान करने वाला है; उत्कृष्ट है; अनन्त गुणों का भण्डार है; समस्त संसार के भय को नष्ट करने वाला है एवं आस्था का एक प्रधान कारण है।।115-116।।

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति द्वारा विरचित मल्लिनाथ पुराण में रत्नत्रय का वर्णन करने वाला पहला परिच्छेद समाप्त हुआ।।1।।

द्वितीय परिच्छेद

मोहल्लारिहंतारं कामाक्षारातिघातिनं।

श्रीमल्लिनाथ तीर्थेशं स्तौमि सच्छक्तिसिद्धये।।

संसार में मोहनीय कर्म अत्यन्त बलवान है। जिन्होंने बलवान बैरी मोहनीय कर्मरूपी मल्ल को सर्वथा नष्ट कर दिया है, जो भयंकर शत्रु कामदेव एवं इन्द्रियों का पूर्णरूप से घात करने वाले हैं एवं तीर्थंकर हैं, ऐसे श्री मल्लिनाथ स्वामी को उन्हीं के तुल्य समस्त शक्ति प्राप्त करने के लिए मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ।।1।। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र रूपी रत्नत्रय के स्वरूप को जतलाने वाले वैराग्य के उत्पादक **मुनिराज सुगुप्त** के वचन सुन राजा **वैश्रवण** ने उक्त प्रकार के रत्नत्रय के पालन करने में अपने को असमर्थ समझा, इसलिए विनयपूर्वक वह यह कहने लगा–कृपानाथ! मुझ सरीखे मनुष्य सदा आर्तध्यान में लीन रहने वाले हैं, सदा हम लोगों की बुद्धियाँ विनष्ट सरीखी रहती हैं। धन, कुटुम्ब आदि में सदा मोही रहते हैं। पाँचों इन्द्रियों के विषयों की ओर सदा हमारी परिणति झुकी रहती है तथा गृह के व्यापारों में सदा संलग्न बने रहते हैं, इसलिए भगवन्! जब व्यवहार रत्नत्रय के पालन करने के लिए भी हमारी सामर्थ्य नहीं, तब हम अत्यन्त कठिन निश्चय रत्नत्रय का पालन तो कर ही नहीं सकते; क्योंकि यह एक सुनिश्चित बात है कि जिस महा भार को गजेन्द्र उठा सकता है, उसे कितना भी प्रयत्न क्यों न किया जाय बैल नहीं उठा सकता। उसी प्रकार जिस चारित्र के महाभार को बड़े-बड़े मुनीन्द्र उठा सकते हैं, उसे मेरे समान असमर्थ पुरुष उठा नहीं सकते। अर्थात् निश्चय रत्नत्रय का पालन करना बड़े-बड़े मुनियों का काम है, मुझ सरीखा असमर्थ पुरुष उस निश्चय रत्नत्रय का पालन नहीं कर सकता। इसलिए हे कृपानाथ! मेरे कल्याण के निमित्त मुझे उस रत्नत्रय की प्राप्ति हेतु कृपा कर ऐसा उपदेश दीजिए, जिससे पूजा तथा उपवास आदि के द्वारा मुझे वह क्रम से प्राप्त हो जाय; क्योंकि मेरे समान पुरुष पूजन आदि के द्वारा ही बड़ी भक्तिपूर्वक तथा ठाट-बाट से उस रत्नत्रय की उपासना कर सकता है।।2-7।। राजा वैश्रवण के ऐसे भक्ति से गद्गद् वचन सुनकर परम संयमी मुनिराज सुगुप्त ने कहा–

''राजन्! यदि तुम ऊपर कहे गए व्यवहार तथा निश्चय रत्नत्रय का पालन नहीं कर सकते तो आम्नाय परिपाटी में प्रचलित है तथा शास्त्रों के अन्दर कहा गया है, उस रत्नत्रय की जो कुछ विधि है, उस विधि को ही तुम करो। सुनो, उस रत्नत्रय की पूजा आदि के क्रम का विधान जिस तरह का है, मैं उसे बतलाता हूँ। उस विधि के आचरण करने से ही तुम्हें नियम से व्रतों की प्राप्ति होगी। वह विधि इस प्रकार है–

कल्याणकारी **भादो मास** में धर्म के स्थान स्वरूप शुक्ल पक्ष की द्वादशी के पवित्र दिन से मोक्षाभिलाषी भव्य को रत्नत्रय व्रत का पालन करना चाहिए। जो महानुभाव रत्नत्रय व्रत का आचरण करे, उसे चाहिए कि वह उस दिन पवित्र वस्त्र धारण करें। अपने चित्त में प्रतिक्षण भगवान श्री जिनेन्द्र का ही ध्यान रखे एवं पूजा की महामनोहर सामग्री लेकर भक्तिपूर्वक भगवान श्री जिनेन्द्र के मन्दिर में जाय।।8-11।। मन्दिर में जाकर भगवान श्री जिनेन्द्र आगम तथा गुरुओं को उसे भक्तिपूर्वक प्रणाम करना चाहिए तथा पूजा करनी चाहिए, वहाँ से अपने गृह आकर मुनियों के लिए निर्दोष प्रासुक, शुद्ध, मधुर तथा तृप्ति प्रदान करने वाला पवित्र आहारदान देना चाहिए; उसके बाद जो आहार बचे वह अपने भ्राता, बन्धु आदि कुटुम्बियों के साथ सानन्द खाना चाहिए।।12-13।। आहार आदि के आरम्भ में अनेक दोषों का होना सम्भव है; इसलिए उन दोषों के प्रत्याख्यान की अभिलाषा से आहार करने के बाद पुनः जिन मन्दिर में जाना चाहिए। वहाँ जाकर अच्छी प्रकार से गुरुओं को नमस्कार करना चाहिए तथा तीन दिन रात्रि पर्यन्त बड़े हर्ष के साथ अनशन व्रत का पालन करना चाहिए। उस रात्रि को उसे मन्दिर में ही रहना चाहिए तथा सम्यग्दर्शन आदि रत्नत्रय का हृदय में चिन्तवन करना चाहिए। प्रातःकाल उठकर सामायिक करना चाहिए तथा फिर भगवान श्री जिनेन्द्र आदि की पूजा के समारोह में लग जाना चाहिए। जिस समय भगवान श्री जिनेन्द्र आदि की पूजन करना समाप्त हो चुके उसके बाद गुरु के पास जाना चाहिए तथा भक्तिपूर्वक उनके सामने खड़ा होकर व्रती को उनसे यह पूछना चाहिए–हे भगवन् मैं रत्नत्रय व्रत की पूजा आचरण करना चाहता हूँ, आप आज्ञा दीजिए। जब सर्वथा हितकारी मार्ग का उपदेश देने वाले गुरु की, रत्नत्रय व्रत की पूजा के लिए आज्ञा मिल जाय, उस समय व्रती को चाहिए कि वह बड़े आनन्द के साथ रत्नत्रय व्रत की परमोत्कृष्ट पूजा का आरम्भ कर दे।।14-17।।

जो महानुभाव रत्नत्रय व्रत की पूजा का प्रारम्भ करना चाहें उन्हें चाहिए कि वे सबसे पहले तीर्थंकर भगवान श्री जिनेन्द्र की पूजा का प्रारम्भ करें तथा उन्हीं के सामने भक्तिपूर्वक बैठकर किसी थाल आदि में या शिला के मध्य में आठ दल (पँखुड़ी) का कमल लिखें। चन्दन का द्रव्य बना कर सुवर्णमयी लेखनी से उस कमल की कली के मध्य भाग में **ॐ ह्रीं बीजाक्षरों** के साथ **'सम्यग्दर्शन'** शब्द लिखें तथा उस कमल की आठों पंखुड़ियों में पहले विस्तार से कहे गए निःशंकित आदि आठों अंगों को बीजाक्षरों के साथ पूजा के लिए लिखे।। जिस समय यह कमलाकार यन्त्र तैयार हो चुके उस समय **ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः।** अष्टांग सम्यग्दर्शन! अत्रावतर, अवतर स्वाहा। **ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं ह्रः** अष्टांगसम्यग्दर्शन! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इस प्रकार आगम में कहे गए मन्त्रों को सानन्द उच्चारण कर विपुल आयोजन के साथ विधिपूर्वक सम्यग्दर्शन की पूजा करना प्रारम्भ कर दें।।18-21।। इस प्रकार सम्यग्दर्शन की पूजा के बाद व्रती को आठों द्रव्यों से भक्तिपूर्वक श्रुतज्ञान की पूजा का प्रारम्भ करना चाहिए। सम्यग्ददर्शन के सदृश किसी थाल आदि में आठ पंखुड़ियों का कमल लिखना चाहिए। चन्दन का द्रव्य बनाकर सुवर्ण की कली

के मध्यभाग में **ॐ** एवं **ह्रीं** बीजाक्षरों के साथ **'सम्यग्ज्ञान'** शब्द लिखना चाहिए एवं उसकी आठों पंखुडियों में बीजाक्षर मन्त्रों के साथ व्यंजनोर्जित आदि आठ आचारों को लिखना चाहिए। इस प्रकार जिस समय सम्यग्ज्ञान का मन्त्र तैयार हो जाय उस समय जल से लेकर फल पर्यन्त निर्मल एवं उत्कृष्ट अष्ट द्रव्यों से विधिपूर्वक उस मन्त्र की पूजा करनी चाहिए।।22-23।। जिस समय सम्यग्ज्ञान के यन्त्र की पूजा समाप्त हो चुके उस समय भक्तिपूर्वक उत्तम तप के स्थान पर गुरुओं का उत्तमोत्तम पूजा की सामग्री से अर्चना कर ऊपर विस्तार से बतलाए गए तेरह प्रकार के चारित्र का भक्तिपूर्वक यन्त्र लिखना चाहिए तथा जब वह यन्त्र लिखकर समाप्त हो जाय, उस समय रत्नत्रय पूजा के विधि- विधान में जो भी उस सम्यक्चारित्र के यन्त्र की पूजा की विधि कही गई है, उसके अनुसार भक्तिपूर्वक विपुल आयोजन के साथ उस यन्त्र की पूजा करनी चाहिए।।24-25।। इस प्रकार रत्नत्रय विधान के बाद अन्त में भाँति-भाँति के फल तथा पक्व अन्नों से शोभित अर्घ–आरती उतारनी चाहिए तथा रत्नत्रय यन्त्रों की तीन बार प्रदक्षिणा देकर रत्नत्रय विधान में जो जप शास्त्र में कहे गए हैं, उन जापों को जपना चाहिए।।26।। इस प्रकार भक्तिपूर्वक बड़े समारोह से रत्नत्रय की पूजा कर रत्नत्रय व्रत को धारण करने वाले महापुरुष को गुरु के समीप जाना चाहिए तथा उनके श्रीमुख से आत्मा का कल्याण करने वाला आगम का स्वरूप आनन्दपूर्वक सुनना चाहिए। इस रीति से जो पुरुष रत्नत्रय व्रत को पालन करने वाला है, उसे तीनों दिन अर्थात् **त्रयोदशी, चतुर्दशी** तथा **पूर्णमासी** के दिन प्रातःकाल, मध्याह्नकाल तथा सायंकाल रत्नत्रय यन्त्रों तथा जिनेन्द्र देव आदि की बड़े समारोह से शुभ तथा उत्कृष्ट पूजन करनी चाहिए। इस प्रकार पूजा के बाद व्रतधारियों को जिन-मंदिर के अन्दर अपने संघ को साथ ले महान उत्सव के साथ महाअभिषेक भी करना चाहिए।।27-29।। रत्नत्रय व्रत धारण करने वालों का यह विशेष कर्तव्य है कि वे तीन दिन तक समस्त गृह सम्बन्धी आरम्भों का त्याग कर बराबर जिन-मन्दिर के अन्दर रहें तथा वहाँ पूजा तथा आवश्यक कृत्यों में दत्तचित्त हो धर्मध्यान से काल व्यतीत करें।।30।। समस्त प्राणियों को अभयदान आदि देकर गीत, नृत्य आदि करा कर व्रती को इस महान पर्व में अपनी शक्ति के अनुसार नाना प्रकार का उत्सव करना चाहिए।।31।। जो पुरुष रत्नत्रय व्रत का आचरण करने वाला है उसे चाहिए कि वह रत्नत्रय व्रत के बाद उस रत्नत्रय के स्मरण के लिए अपने दक्षिण हाथ में तीन मोतियों को धारण करे।।32।। इस प्रकार रत्नत्रय के यन्त्र तथा श्री जिनेन्द्र आदि की त्रयोदशी, चतुर्दशी तथा पूर्णिमा– इन तीन दिन पर्यन्त भक्तिपूर्वक पूजा कर प्रतिपदा के दिन भी पैंतीस (छत्तीस) प्रकार के व्यंजनों से आनन्दपूर्वक उनकी पूजा करें।।33।। उसके बाद वह व्रती गृह आवे तथा उत्तम, मध्यम, जघन्य–तीनों प्रकार के पात्रों को यथायोग्य दान देकर प्रसन्नता से प्रासुक तथा मधुर भोजन से पारणा करे। उसके बाद शुद्ध रत्नत्रय की तीव्र भक्ति तथा प्रेम से जिसकी आत्मा गद्गद है, ऐसा वह रत्नत्रय व्रत का आचरण करने वाला व्रती पारणा के दिन अवशिष्ट समय को तथा समस्त रात्रि को जिन मन्दिर में ही जाकर

व्यतीत करे।।34-35।। इस प्रकार हे राजन्। तुम्हारे सामने यह रत्नत्रय की पूजा का विधान विस्तार से कहा है। तुम्हारे से भिन्न दूसरे पुरुष के लिए यह संक्षेप से कहा जा सकता है। वह संक्षेप से कहा जाने वाला रत्नत्रय का विधान इस प्रकार है। तुम ध्यान से सुनो—

जो पुरुष रत्नत्रय व्रत का पालन करने वाला है, उसे भगवान **अरहनाथ, मल्लिनाथ** एवं **मुनिसुव्रतनाथ**—इन तीनों तीर्थंकरों की प्रतिमाओं का जिस रूप से शास्त्र में अभिषेक का विधान लिखा हुआ है, उस विधान से भक्तिपूर्वक अभिषेक करना चाहिए तथा इन तीनों प्रतिमाओं के सामने पहले के समान भक्तिपूर्वक रत्नत्रय यन्त्रों को लिखकर रख देना चाहिए। एवं एक साथ सबका पूजन करना चाहिए। इस रूप से भी रत्नत्रय का विधान संक्षेप से माना गया है। रत्नत्रय का विधान भाद्रपद मास में बतलाया गया है। इसलिए ग्रन्थकार भाद्रपद मास की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार मनुष्यों में श्रेष्ठ राजा माना जाता है, उसी प्रकार समस्त मासों के अन्दर भाद्रपद मास ही श्रेष्ठ है; क्योंकि वह अनेक प्रकार के व्रतों का स्थान स्वरूप है एवं धर्म प्रधान कारण है।।36-39।। इसलिए समस्त गृहारम्भ का परित्याग कर इस भाद्रपद मास में व्रती पुरुष पूजा, व्रत एवं उपवास आदि के द्वारा तथा धर्म के आचरण से पापों के नाश में प्रवृत्त होते हैं।।40।। जिस रूप से भाद्रपद मास में रत्नत्रय व्रत का विधान बतलाया है, उसी विधि से उसे माघ मास एवं चैत मास में भी आचरण करना चाहिए। क्योंकि यह अनुपम रत्नत्रय व्रत संसार के उत्तमोत्तम भोग प्रदान कर अन्त में मोक्ष सुख का प्रदान करने वाला है।41।। जो महानुभाव तीन दिन पर्यंत उपवास करने के लिए असमर्थ हैं; किन्तु रत्नत्रय व्रत के पालन करने में पूरी-पूरी भक्ति एवं श्रद्धा रखते हैं, वे शक्ति के अनुसार एक प्रोषध आदि से ही रत्नत्रय व्रत के पालक माने जाते हैं। अर्थात् उनके लिए त्रयोदशी, चतुर्दशी एवं पूर्णिमा—इन तीनों दिन तक उपवास करने की कोई आवश्यकता नहीं। वे ऐसा भी कर सकते हैं कि त्रयोदशी के दिन एक बार भोजन कर सारा दिन एवं रात्रि का समय मन्दिर में ध्यान आदि कार्यों में व्यतीत करें। चतुर्दशी के दिन पूरा उपवास करें एवं मन्दिर के अन्दर ही स्वाध्याय आदि में दत्तचित्त होकर अपना समय व्यतीत करें। पूर्णमासी के दिन पूजा आदि आवश्यक कर्मों के समाप्त हो जाने पर एक बार भोजन करें एवं फिर मन्दिर में ही जाकर दिन का एवं रात्रि का समस्त समय स्वाध्याय आदि में लगावें, प्रतिपदा के दिन घर आवें तथा जो भी विधि ऊपर कही गई है, उसे करें। यहाँ पर शंका नहीं करनी चाहिए कि व्रत की जो पूरी विधि बतलाई है, उसी से अभीष्ट फल की सिद्धि हो सकती है तथा न्यूनता होने से वह फल प्राप्त नहीं हो सकता; क्योंकि शक्ति के अनुसार किए जाने वाले दान तथा तप भी संसार में अनेक अभीष्ट फलों के प्रदान करने में कारण माने गए हैं—उनसे भी संसार में अनेक प्रकार के अभीष्ट तथा उत्तमोत्तम फलों की प्राप्ति होती है।।42-43।। जिस रत्नत्रय व्रत का ऊपर खुलासा रूप से वर्णन किया गया है, वह व्रत श्रावक, श्राविका, मुनि तथा आर्यिका सबों को पालन करना चाहिए, क्योंकि वह पवित्र व्रत पापों का सर्वथा नाश करने वाला है एवं नाना प्रकार के सुखों

की इससे प्राप्ति होती है।।44।। यह परमोत्तम रत्नत्रय व्रत तीन वर्ष पर्यन्त बराबर पालना चाहिए, जिस समय तीन वर्ष समाप्त हो जायें तथा व्रत भी पूरा हो जाय, उस समय जिसकी जैसी शक्ति हो भक्तिपूर्वक उद्यापन करना चाहिए।।45।। उद्यापन की विधि इस प्रकार है–खूब ऊँचे-ऊँचे विशाल तथा रत्नों की दीप्ति से दैदीप्यमान जिन चैत्यालय बनावें तथा उनमें अरहनाथ, मल्लिनाथ, आदि प्रतिमाओं की ठाठ-बाट से प्रतिष्ठा कराकर उन्हें चैत्यालय में विराजमान करें। तत्पश्चात् श्रावक, श्राविका एवं मुनि तथा आर्यिका–इस चार प्रकार के संघ को साथ लेकर जिन-मन्दिरों में सबों को अभिभूत करने वाला महाअभिषेक करावें तथा बड़े समारोह के साथ महा पूजा आदि का उत्सव करना प्रारम्भ करें। घण्टा, चमर, चाँदनी, झाड़ी तथा आरती आदि जितने भी धर्म के अनेक प्रकार के उपकरण हैं, उनमें हर एक को तीन-तीन कर दें।।46-48।। पक्व, अन्न, लाडू, घेवर, फेनी आदि जो भी पूजा के द्रव्य हैं, अपनी शक्ति के अनुसार भक्तिपूर्वक उन्हें प्रदान करें तथा महामनोहर नारियल, केला आदि के उत्तमोत्तम फलों को दे।।49।। इस प्रकार पक्व, अन्न तथा नारियल के फल आदि पूजा के कारणों को तथा घण्टा, चमर, चाँदनी आदि शोभा के कारणों को जिन-मन्दिर में प्रदान कर उत्तमोत्तम वाद्य, गीत तथा नृत्य आदि के विपुल आयोजन से जिन-मन्दिर में महान् उत्सव भी करें।।50।। जो महानुभाव रत्नत्रय व्रत से विभूषित हैं, उन्हें अपनी शक्ति के अनुसार यथायोग्य धर्म के प्रधान कारण ग्रन्थ भी आचार्यों को भक्तिपूर्वक भेंट करने चाहिए। श्रावक, श्राविका तथा मुनि, आर्यिका के भेद से जो ऊपर चार प्रकार का संघ कहा गया है, उन्हें विशिष्ट सम्मान के साथ भक्तिपूर्वक बुलाकर अत्यन्त हर्ष से आहार, औषध आदि दान देना चाहिए।।51-52।। प्रभावना अंग का स्वरूप ऊपर जहाँ पर सम्यग्दर्शन के आठ अंगों का स्वरूप कहा है, वहाँ विस्तार से कह दिया है, इसलिए जो महानुभाव रत्नत्रय व्रत के पालक हैं, उन्हें भगवान जिनेन्द्र के शासन का माहात्म्य प्रकट कर एवं मन्दिरों के अन्दर भी अनेक प्रकार के बहुविध उत्सव कराकर सम्यग्दर्शन के प्रधान अंग प्रभावना का पालन करना चाहिए।।53।। यह तो हुई अत्यन्त व्ययसाध्य उद्यापन की बात, किन्तु जो महानुभाव इतना व्यय कर उद्यापन करने में असमर्थ हैं–उद्यापन के लिए इतना अधिक व्यय नहीं उठा सकते, उन्हें चाहिए कि वे अपनी शक्ति के अनुसार भक्ति एवं हर्ष के साथ थोड़ा ही उद्यापन करें–उन्हें उतने ही उद्यापन से अभीष्ट फल की प्राप्ति होगी, परन्तु जो महानुभाव इतने में भी असमर्थ हैं कि थोड़ा-सा भी उद्यापन का विधान नहीं कर सकते, उन्हें चाहिए कि वे रत्नत्रय व्रत का जो विधान बतलाया गया है, विशुद्ध भावों से उसका दूना विधान करें अर्थात् तीन वर्ष की जगह वे छः वर्ष तक रत्नत्रय का विधान बराबर करें, ऐसा होने से उन्हें उद्यापन करने की फिर आवश्यकता नहीं।।54-55।। यह रत्नत्रय व्रत असीम पुण्य के अर्जन का कारण हैं स्वर्ग का कारण है, संसार के समस्त पापों का सर्वथा नाश करने वाला है एवं मुक्तिरूपी महादुर्लभ लक्ष्मी को वश करने वाला है।।56।। रत्नत्रय व्रत की प्रशंसा करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं कि परम सुख का स्थान स्वरूप एवं समस्त व्रतों का

सार इस रत्नत्रय व्रत को जो महानुभाव धारण करते हैं, वे सोलहवें स्वर्ग के सुखों का लाभ करते हैं एवं धीरे-धीरे अनुक्रम से वे अविनाशी मोक्ष सुख का भी रसास्वादन करते हैं।।57।।''

मुनिराज सुगुप्त के मुख से रत्नत्रय का माहात्म्य सुनकर राजा वैश्रवण को परमानन्द प्राप्त हुआ। भक्तिपूर्वक उसने रत्नत्रय व्रत धारण किया एवं विनयपूर्वक मुनिराज को नमस्कार कर वह अपने राज-मन्दिर में आ गया।।58।। राज-मन्दिर में आकर राजा वैश्रवण ने परम भक्ति एवं श्रद्धा के साथ मोक्षलक्ष्मी की प्राप्ति के लिए रत्नत्रय व्रत का प्रारम्भ किया एवं वास्तविक रीति से उसे पूरा किया।।59।। व्रत के अंत में उद्यापन के समय राजा वैश्रवण ने भगवान श्री जिनेन्द्र के अनेक मन्दिरों का निर्माण कराया तथा महान उत्सव का समारम्भ किया।।60।। तब राजा वैश्रवण ने अन्य जिन-मन्दिरों में तथा राज-परिसर के जिन-मन्दिरों में समस्त प्रकार के ऐश्वर्यों को प्रदान करने वाली महापूजा का प्रतिदिन करना प्रारम्भ कर दिया। वह नरपाल मोक्षलक्ष्मी की प्रचुर लालसा से प्रतिदिन उत्तम पात्रों को आहर, औषध आदि चारों प्रकार का दान देने लगा, किसी भी हालत में जैन धर्म पालन करने वाले दीन जनों का वह निरीह एवं निर्मल वृत्ति से बड़े हर्ष से उपकार करने लगा एवं साधर्मी भ्राताओं में गाय-बछड़े के समान प्रेम दर्शाकर परिपूर्ण वात्सल्य अंग का उसने पालन करना आरम्भ कर दिया।।61-62।। वह महानुभाव राजा वैश्रवण अष्टमी, चतुर्दशी आदि समस्त पर्वों में ऊपर कही गई विधि के धारक प्रोषध व्रत का आचरण करने लगा एवं निर्मल भावों से गृह के कार्यों से सर्वथा विमुख हो वह पवित्र आचरण कर शुभ आचरण करने वाले यति के समान हो गया।।63।। अहिंसा, अचौर्य, सत्य, स्वदार-सन्तोष एवं परिग्रह परिमाण-ये पाँच अणुव्रत, दिग्व्रत, भोगोपभोग परिणामव्रत एवं अनर्थदण्डव्रत-ये तीन गुणव्रत एवं देशावकाशिक, सामायिक, प्रोषधोपवास तथा वैयावृत्य-ये चार शिक्षाव्रत इस प्रकार श्रावकों के बारह व्रत हैं। राजा वैश्रवण मन-वचन-काय की शुद्धिपूर्वक पाँचों अणुव्रत, तीनों गणुव्रत तथा चारों प्रकार के शिक्षाव्रतों का निर्दोषरूप से बड़े यत्न के साथ पालन करने लगा।।64।। वह महानुभाव उस दिन से अज्ञान की सर्वथा निवृत्ति के लिए तथा ज्ञान सम्पादन करने के लिए भगवान अर्हंत (जिनेन्द्र) के मुख से उत्पन्न जैन शास्त्रों का श्रवण तथा मनन करने लगा तथा उससे मुक्ति प्राप्ति की अभिलाषा चित्त में करने लगा।।65।। हितकारी तथा परिमित वचनों का बोलने वाला वह वाग्मी राजा वैश्रवण सभा में रहने वाले समस्त प्राणियों को उनका उपकार हो-इस पवित्र अभिलाषा से प्रतिदिन दिव्य तथा मनोहर वचनों में धर्मोपदेश देने लगा।।66।। जहाँ से अगणित पवित्र आत्माओं ने मोक्ष प्राप्त की है, ऐसे तीर्थों की यात्रा करना, जिनेन्द्र आदि की पूजा करना, उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम करना, उत्तम पात्रों का आहार आदि दान देना तथा भक्तिपूर्वक शीलव्रत आदि का पालन करना; इस प्रकार के पुण्य को उत्पन्न करने वाले पवित्र कार्यों से वह राजा सदा ही धर्म का आचरण करने लगा।।67।। वह राजा चित्त में जिस किसी भी पदार्थ के बारे में विचार करता था, उस समय केवल धर्म का ही विचार करता, धर्म के विचार के सिवाय अन्य किसी विचार को

उसके हृदय में जगह नहीं मिलती थी। जब कभी वह मनुष्यों के सामने कुछ वचन बोलता था उस समय धर्म से सम्बन्ध रखने वाला ही वचन बोलता था, उसके मुख से सिवाय धर्म सम्बन्धी वचन के अतिरिक्त अन्यवचन नहीं निकलता था। शरीर से भी वह धर्म क्रियाओं का ही आचरण करता था। अन्य किसी प्रकार की क्रियाओं का उसके शरीर से आचरण नहीं होता था; इसलिए वह राजा साक्षात् धर्मस्वरूप था।।68।। वह राजा वैश्रवण सर्वदा धर्म का आचरण करता था, इसलिए यद्यपि वह समस्त इन्द्रियों को तृप्त करने वाले भोगों का भोग करता था परन्तु धर्मानुकूल उत्कृष्ट भोगों का ही भोग करता था, धर्म विरुद्ध मर्यादा से अतिक्रान्त भोगों का भोग नहीं करता था।।69।।

कदाचित् वर्षा ऋतु का पूर्ण प्रारम्भ हो चुका था तथा उसके निमित्त से वन की वृक्षावली फल-फूलों से युक्त हरी-भरी शोभित हो रही थी। उस समय राजा वैश्रवण को वन की वृक्षावली देखने का कौतूहल हुआ; इसलिए वह अपने वशवर्ती अनेक राजाओं के साथ वन की शोभा निरखने चल दिया।।70।। मार्ग के समीप में ही एक बड़ का वृक्ष था, जो कि अत्यन्त ऊँचा था, महामनोहर था, पत्तों तथा डालियों से आच्छादित था, गोलाकार था एवं सैकड़ों पक्षियों से भरा था।।71।। मार्ग में जाते हुए राजा ने वह बड़ का वृक्ष देखा एवं आश्चर्य से युक्त होकर इस प्रकार कहने लगा–'देखो! देखो! यह वृक्ष कितना चौड़ा है, कितना ऊँचा है, इसका मूल भाग कैसा जकड़ा हुआ है यह कैसा सुन्दर एवं सघन है।' ऐसा कहकर एवं साथ में रहने वाले लोगों के सामने उस वृक्ष के विषय में अत्यन्त आश्चर्य प्रगट कर वह मार्ग में और भी आगे को चल दिया एवं क्रम से चलता-चलता वन के मध्यभाग में आ पहुँचा।।72-73।। वन में जाकर वहाँ राजा वैश्रवण उत्तमोत्तम स्त्रियों के साथ एवं राजपुत्रों के साथ अपनी इच्छा से अनेक प्रकार की क्रीड़ा करने लगा। जब क्रीड़ा समाप्त हो गई एवं नगर को लौटने लगा तो जिस मार्ग से गया था, उसी मार्ग से नगर को बड़े आनन्द से लौटा। मार्ग में क्या देखता है कि वह आश्चर्यकारी लम्बाई-चौड़ाई वाले जिस बड़ के वृक्ष को छोड़ गया था, वही क्षणभर में विद्युत के गिरने से खाक हुआ पड़ा है।।74-75।। बस! कुछ ही क्षणों में वृक्ष की यह विस्मित करने वाली दुर्दशा देखकर उसे संसार से एकदम वैराग्य हो गया एवं वह मन में इस प्रकार की चिन्ता करने लगा। संसार में बद्धमूलता–मजबूत जड़ सदा किसी की भी नहीं रहती। न किसी का विस्तार–फलना-फूलना सदा रहता है एवं न तुंगत्व–अभिमान किसी का सदा स्थिर रहता है।।76।। बड़े आश्चर्य की बात है कि देखो! कुछ देर पहले यह वृक्ष कितना विशाल एवं विस्तृत था, सो जब आधे ही क्षण में ऐसी विलक्षण अवस्था को प्राप्त हो गया, अर्थात् खाक में मिल गया, तब किसी का जीवन, यौवन, सुन्दरता आदि स्थिर रहेंगे–यह क्या निश्चय है? मेरा तो यह निश्चय है कि जिस प्रकार यह बड़ का वृक्षमूल से लेकर चोटी पर्यंत विद्युत की तीव्र ज्वाला से जल कर खाक हो गया है, उसी प्रकार यमराजरूपी अग्नि से ये समस्त जीव-जीवों के शरीर खाक में मिल जायेंगे, अर्थात् किसी जीव

की पर्याय सदा काल स्थिर नहीं रह सकती।।77-78।। जिस राज्य को पाकर लोग मद में मत्त हो जाते हैं, वह राज्य धूल के समान है, महा निन्द्य है, दु:ख तथा चिन्ता आदि का समुद्र है। इसके निमित्त से अनेक प्रकार के आरम्भ करने पड़ते हैं एवं उनसे जायमान पापों की उत्पत्ति होती है तथा सदा इसके लिए निन्दित ध्यान ही बना रहता है, इसलिए ऐसे निन्दित राज्य का कोई बुद्धिमान पालन नहीं कर सकता।।79।। लक्ष्मी का घमण्ड लोगों को पागल कर देता है, सो यह लक्ष्मी छाया के समान चंचल है। अर्थात् जिस प्रकार वृक्ष की छाया कभी पश्चिम की ओर तो कभी पूर्व की ओर हो जाती है, उसी प्रकार यह लक्ष्मी आज किसी की है, तो कल किसी की है तथा यह समस्त चिन्ताओं को उत्पन्न करने वाली है, अर्थात् लक्ष्मी के सम्बन्ध से ही अनेक प्रकार की चिन्ता लगी रहती है। निर्धन को विशेष चिन्ता नहीं व्यापती तथा यह लक्ष्मी महा दुष्ट है एवं रागद्वेष, अहंकार तथा उन्माद सब को उत्पन्न करने वाली है; इसलिए जो पुरुष सज्जन हैं, वास्तविक रूप से हित-अहित के जानकार हैं, उन्हें यह लक्ष्मी कभी भी रञ्जायमान नहीं कर सकती।।80।। मोह के तीव्र जाल में जकड़ कर लोग भ्राता, पिता, पुत्र, स्त्री आदि बांधवों को अपना मानते हैं; परन्तु वे बांधव सर्वथा बन्धन स्वरूप ही हैं; क्योंकि स्त्री तो बेड़ी के समान है, अर्थात् जिस पुरुष के पैर में बेड़ी पड़ी हुई है, वह पुरुष जिस प्रकार कहीं नहीं जा सकता एवं जाता है, वहाँ बेड़ी सहित ही जाता है, उसी प्रकार जिस पुरुष की स्त्री मौजूद है, वह पुरुष भी कहीं नहीं जा सकता तथा जहाँ जाता है, वहाँ स्त्री को भी साथ ही रखना पड़ता है, इसलिए दीक्षा आदि शुभ कर्मों में उसकी प्रवृत्ति नहीं होती तथा गले में जिस प्रकार श्रृंखला (तोक) पड़ी रहती है, उसके समान पुत्र हैं एवं समस्त कुटुम्ब पाश के समान है।।81।। यह गृहस्थाश्रम कारागार-कैदखाने के समान है, महा घोर है। नाना प्रकार की चिन्तायें एवं उनसे जायमान दु:ख, शोक आदि से व्याप्त है। समस्त पापों का स्थान है। वास्तविक धर्म को जड़ से उखाड़ कर फेंक देने वाला है एवं काम, क्रोध, तीव्र मोह, रागद्वेष आदि का समुद्र है तथा अनन्त भवों का प्रदान करने वाला है, अर्थात् गृहस्थाश्रम का सम्बन्ध रहना अनन्त काल पर्यन्त मोक्ष सुख का बाधक है; इसलिए ऐसे महादु:खदायी पापी गृहस्थाश्रम में कोई बुद्धिमान प्रेम नहीं कर सकता।।82-83।।

जिनके जाल में निरन्तर यह जीव फंसा रहता है, ऐसे ये भोग काले भुजंग के समान हैं, क्योंकि जिस प्रकार भुजंग ऊपर से अच्छा जान पड़ता पर भीतर से महादुष्ट है, उसी प्रकार ये भोग भी भोगते समय तो मधुर जान पड़ते हैं परन्तु अन्त में ये महादु:खदायी होते हैं। भुजंग जिस प्रकार महादुष्ट होता है, उसी प्रकार ये भोग भी महादुष्ट हैं। भुजंग भी जिस प्रकार काटते ही शीघ्र प्राणों का नाश करने वाला है, उसी प्रकार ये भोग भी प्राणों का नाश करने वाले हैं। भुजंग की उत्पत्ति जिस प्रकार महान कष्टपूर्वक होती है, उसी प्रकार विषय भोगों की प्राप्ति भी अनेक प्रकार के दु:खों को झेलकर ही होती है। भुजंग का काटना जिस प्रकार अनेक प्रकार के दु:खों का कारण होता है, उसी प्रकार ये विषय भोग भी अनन्त दु:खों के कारण हैं। सर्प जिस प्रकार अत्यन्त

चंचल होता है, उसी प्रकार ये भोग भी अत्यंत चंचल हैं। क्षणभर में आने-जाने वाले हैं। भुजंग जिस प्रकार किसी को सन्तोष प्रदान नहीं कर सकता, उसी प्रकार ये भोग भी किसी प्रकार का सन्तोष उत्पन्न नहीं कर सकते। जितने-जितने अधिक भोग भोगे जाते हैं, उतनी-उतनी ही अशान्ति बढ़ती चली जाती है। भुजंग जिस प्रकार क्रूर होता है एवं सदा क्रूर कर्मों का करने वाला होता है, उसी प्रकार ये विषय भोग भी अत्यन्त क्रूर हैं एवं इनको भोगने से सर्वदा महा क्रूर कर्मों का आस्रव होता रहता है। भुजंग जिस प्रकार शरीर के कदर्थन से उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार ये विषय भोग भी शरीर के कुत्सित आचरण से पैदा होते हैं इनके भोगने से शरीर का सर्वनाश होता है; इसलिए ऐसे महा दु:खदायी भोगों का बुद्धिमान कभी सेवन नहीं कर सकता।।84-85।। यह शरीर रूपी झोपड़ा माता के रज तथा पुरुष के वीर्य से उत्पन्न हुआ है। हड्डी, मज्ज आदि सात धातु स्वरूप है, महा अशुभ है। भूख, प्यास, काम, वृद्धावस्था, क्रोध और अनेक प्रकार के रोगों की ज्वालाओं से व्याप्त है तथा विष्टादि महा अपवित्र पदार्थों का घर है, अत्यन्त निन्दनीय है। पीव सरीखी सड़ी इससे दुर्गन्धि छूटती रहती है, यमराज का आश्रम है—जिस समय यमराज का प्रकोप होता है, तत्काल इसे खाक में मिल जाना होता है एवं क्षणभर में निशीक है। ऐसे इस शरीर रूपी झोपड़े में विद्वान कभी ठहरने की लालसा नहीं कर सकता तथा न वह शरीर को ही सर्वस्व मान कर इत्र, तैल आदि से उसकी सेवा कर सकता है।।86-87।। यह संसार जिसका न आदि है, न अन्त है, ऐसा विशाल समुद्र है; क्योंकि जिस प्रकार समुद्र में बड़वानल होती है, उसी प्रकार इस संसार में भी घोर नर्करूपी बड़वानल मौजूद हैं—नरकों में जाकर नारकी सदा अग्नि के भयानक कुण्डों में जलते-उछलते रहते हैं। अतएव यह संसार समुद्र के समान गम्भीर है तथा जिस प्रकार समुद्र मे अथाह जल होता है, उसी प्रकार यह संसार भी समस्त प्रकार के अकल्याण रूपी जल से भरा हुआ है। जिस प्रकार समुद्र में बड़े-बड़े मत्स्य होते हैं; उसी प्रकार यह समुद्र भी भयंकर रोगरूपी मत्स्यों से खचाखच भरा हुआ है। जिस प्रकार जहाजों को लूटने के लिए समुद्र में चोर-डाकुओं का जमघट रहता है, उसी प्रकार इस संसार में भी समस्त जीवों को लूटने वाले पाँच इन्द्रियरूपी पाँच चोर हैं। इनके जाल में फँसकर निरन्तर जीव ठगे जाते हैं। जिस प्रकार समुद्र भयंकर पवन से व्याप्त रहता है, उसी प्रकार यह संसार भी जन्म-मरण एवं वृद्धावस्था रूपी तीव्र पवन के झकोरों से व्याप्त है समुद्र जिस प्रकार महाभयानक होता है।

उसी प्रकार यह संसार भी महाभयानक हैं समुद्र जिस प्रकार महाचंचल, महाविषम, महाघोर एवं असार होता है उसी प्रकार यह संसार भी महाचंचल, महाविषम, महाघोर एवं निस्सार है। जिस प्रकार समुद्र का पार पाना कठिन है, उसी प्रकार इस संसार समुद्र को भी जल्दी पार नहीं पाया जा सकता एवं समुद्र जिस प्रकार अगम्य है, उसी प्रकार यह संसार भी महा अगम्य है। संसार में रुलने वाले जीव कभी शुभगति की प्राप्ति नहीं कर सकते। ऐसे इस महाभयानक संसार में धर्मरूपी जहाज में न बैठने वाले ये दीन जीव निरन्तर डूबते एवं उछलते रहते

हैं।।88-90।। प्रात:काल में दर्भ-दाभ की अनी पर लगी हुई जल की बूँद जिस प्रकार चंचल है, थोड़ी ही देर में विनाश हो जाने वाली है, उसी प्रकार यह मनुष्यों का जीवन भी विनाशीक है, जल्द नष्ट हो जाने वाला है, जिस प्रकार विद्युत अत्यन्त चंचल पदार्थ है, क्षण भर में विनष्ट हो जाने वाला है, उसी प्रकार मनुष्यों की सामर्थ्य, शरीर इन्द्रियों की सामग्री अत्यन्त चंचल है–देखते-देखते विनष्ट हो जाने वाली है तथा अशुभ कर्म का कारण होने से यह अशुभ है।।91।। समय आदि काल के भेदों से प्रतिक्षण मनुष्यों की आयु क्षीण होती रहती है तथा जिस प्रकार छिद्रयुक्त हाथ में रखा हुआ जल प्रतिक्षण गिरता रहता है, उसी प्रकार मनुष्यों के यौवन आदि भी प्रतिक्षण नष्ट होते रहते हैं।।92।। इसलिए जो पुरुष मोक्षाभिलाषी हैं–मोक्ष के अनिवाशी सुख का अनुभव करना चाहते हैं, उन्हें जब तक आयु क्षीण नहीं हो जाय, बराबर कार्य करने की सामर्थ्य भी रहे, यौवन अवस्था में शरीर में जाज्वल्यमान रहे, अपने-अपने विषयों के ज्ञान कराने वाले इन्द्रियाँ भी सबल रहें तथा जब तक वृद्धावस्था शरीर पर अपना प्रभाव न डाले उसके पहले ही गृहरूपी पाप का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए एवं दिगम्बर जैनेन्द्र दीक्षा धारण कर मोक्षरूपी लक्ष्मी के चित्त को आनन्द प्रदान करने वाला घोर तप तपना चाहिए।।93-94।।

राजा वैश्रवण को वटवृक्ष के अकस्मात् जल जाने से संसार, शरीर, भोग तथा गृह आदि से वैराग्य तो हो ही गया था, परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से उनके स्वरूप का विचार करने से और भी उसे दूना वैराग्य हो गया। संसार, शरीर आदि पदार्थों से उसका सर्वथा ममत्व छूट गया एवं दिगम्बरी दीक्षा धारण करने के लिए उसने पूर्णरूप से चित्त में ठान ली।।95।। वह राजा अपने राज्य आदि से निराकांक्ष–विमुख हो गया एवं मुक्ति लक्ष्मी के सिद्ध करने के लिए उसकी पूरी-पूरी अभिलाषा हो गई। बड़ के वृक्ष के समीप से प्रतिक्षण, अनित्य, अशरण आदि बारह भावनाओं का ही बारम्बार चिन्तवन करता हुआ राजमहल तक पहुँचा।।96।। राजमहल में पहुँच कर राजा वैश्रवण ने सज्जनों को सर्वथा त्यागने योग्य ऐसे राज्य को अपने पुत्र को प्रदान किया एवं जीर्ण तृण के समान अपने समस्त ऐश्वर्य का सर्वथा परित्याग कर वह श्रीनाग पर्वत की ओर चल दिया। श्रीनाग पर्वत पर समस्त कषाय एवं इन्द्रियों के बाँधने में सर्वथा नागपाश के समान अर्थात् जिनके पास कषाय इन्द्रियों के विषय की लोलुपता फटकने तक नहीं पाती थी, ऐसे श्रीनाग नाम के मुनिराज थे। अनेक बड़े-बड़े राजाओं के साथ राजा वैश्रवण उनके समीप गया एवं भक्तिपूर्वक तीन प्रदक्षिणा देकर मस्तक झुकाकर नमस्कार किया। मुनिराज के मुखरूपी चन्द्रमा से झरने वाला धर्मरूपी अमृत पिया, जिससे उसकी मोहरूपी अग्नि शान्त हो गई एवं वह अपने को सुखी अनुभव करने लगा। उसी समय उसने मन-वचन-काय की शुद्धिपूर्वक बाह्य अभ्यन्तर दोनों प्रकार के परिग्रह का त्याग कर दिया एवं अनेक राजाओं के साथ उसने जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली।।97-100।।

जिन मुनिराज वैश्रवण ने पहले तो तीव्र पुण्य के उदय से समस्त उत्तम सुख के समुद्र स्वरूप

सारभूत धर्म कार्यों को किया, पीछे से ''अविनाशी अनुपम मोक्ष सुख प्राप्त हो जाय'' इस अभिलाषा से समस्त सुखों की स्थान स्वरूप जैनेश्वरी दीक्षा धारण की, वे मुनियों के शिरोमण मुनिराज वैश्रवण चिरकाल इस संसार में जयवन्त होकर वृद्धि को प्राप्त हों।।101।। जिन पवित्र भगवान मल्लिनाथ ने पहले तो रत्नत्रयनाम का परम पावन व्रत पालन किया, पीछे रात्रि-दिन मनुष्य लोक के उत्तमोत्तम भोग भोगे, तीर्थंकर पद प्राप्त किया एवं बाल अवस्था में ही घोर तप के द्वारा मोक्षरूपी स्त्री को स्वीकार किया, वे मल्लिनाथ जिनेन्द्र हमें अपनी दिव्य शक्ति प्रदान करें।।102।।

भट्टारक सकलकीर्ति कृत संस्कृत मल्लिनाथ चरित्र की पं. गजाधरजी न्यायतीर्थ विरचित वचनिका में रत्नत्रय का दूसरा परिच्छेद समाप्त हुआ।।2।।

तृतीय परिच्छेद

घातिकर्मारिहंतारमनंतगुणवारिधिं।
त्रिजगत्सेवितं नौमि श्रीमल्लिंतद्‌गुणाप्तये॥

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय एवं अन्तराय नामक चार घातिया कर्मरूपी बैरियों को जड़ से उखाड़ कर फेंक देने वाले, अनन्त गुणों के समुद्र एवं तीनों लोकों के जीव भक्तिपूर्वक जिनकी सेवा तथा पूजा करते हैं, ऐसे भगवान श्रीमल्लिनाथ को मैं उनके अनुपम गुणों की प्राप्ति के लिए भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ॥1॥ समस्त प्रकार के प्रमादों को त्यागकर विनयपूर्वक मुनिराज वैश्रवण ने अंगों का अध्ययन करना प्रारम्भ कर दिया तथा थोड़े ही दिनों में वे मुनिराज अपनी श्रेष्ठ बुद्धि से ग्यारह अंग स्वरूप सिद्धान्त समुद्र के पार को प्राप्त हो गये, अर्थात् उन्हें ग्यारह अंगों का परिपूर्ण ज्ञान हो गया॥2॥ वे परम धीर-वीर मुनिराज अपनी सामर्थ्य को न छिपाकर प्रतिदिन बाहर प्रकार के तपों को तपने लगे, जो तप निर्दोष थे तथा दुष्कर्म रूपी वन को भस्म करने के लिए दावानल के समान थे॥3॥ वे मुनिराज शून्य खण्डहरों में, शमशान भूमियों में, पर्वत की गुफाओं में तथा जनशून्य वृक्षों की खोलारों में सिंह के समान निर्भय होकर निवास करते थे॥4॥ स्पर्शन आदि इन्द्रियों पर परिपूर्णरूप से विजय पाने वाले तथा प्रमाद रहित वे मुनिराज सदा उत्तम ध्यान तथा अध्ययन में प्रवृत्त रहते थे तथा स्वप्न के अन्दर भी वे राजकथा आदि विकथाओं का उल्लेख करते थे॥5॥ आर्त, रौद्र, धर्म तथा शुक्ल के भेद से ध्यान के चार भेद माने जाते हैं, इनमें आदि के ध्यान निन्दित हैं; क्योंकि उनसे निन्दित गतियों की प्राप्ति होती है एवं अन्त के धर्म तथा शुक्ल-ये दो ध्यान प्रशस्त हैं; क्योंकि उनसे स्वर्ग-मोक्ष के सुख प्राप्त होते हैं। वे मुनिराज वैश्रवण मोक्ष प्राप्ति की अभिलाषा से सदा चित्त को स्थिर कर उत्तम ध्यान, धर्म-ध्यान तथा शुक्ल ध्यान का ही चिन्तवन करते थे, आर्त-ध्यान तथा रौद्र-ध्यानरूप अशुभ ध्यानों का कभी भी अपने चित्त में विचार न लाते थे॥6॥ वे धीर बुद्धि के धारक मुनिराज जिस प्रकार पवन सर्वत्र अकेला विचरता रहता है, उसी प्रकार ग्राम, खेट, मटम्ब, उद्यानों के प्रदेश, पर्वत तथा वन आदि में अकेले ही विहार करते फिरते थे, निर्भय वृत्ति के कारण किसी का भी संग नहीं चाहते थे॥7॥

दर्शनविशुद्धि 1, विनयसम्पन्नता 2, अतिचार रहित शीलव्रतों का पालना 3, सर्वदा ज्ञानाभ्यास करना 4, संवेग रखना 5, शक्ति के अनुसार दान करना 6, शक्ति के अनुसार तप करना 7, साधुसमाधि 8, वैयावृत्य करना 9, अर्हन्त भगवान की भक्ति करना 10, आचार्य भगवान की भक्ति करना 11, शास्त्रों के अधिक जानकार उपाध्यायों की भक्ति करना 12, प्रवचन की भक्ति करना 13, छः आवश्यकों का पालन करना 14, मोक्ष मार्ग की प्रभावना करना 15 तथा वात्सल्य भाव रखना 16–ये सोलह भावना हैं। इन सोलह प्रकार

की भावनाओं के भाने से तीर्थंकर पद की प्राप्ति होती है, मुनिराज वैश्रवण ने भी इस प्रकार सोलह भावनाओं का भाना प्रारम्भ कर दिया।

मुनिराज वैश्रवण का जीवादि पदार्थों का श्रद्धान शंका-कांक्षा आदि दोषों से रहित था एवं नि:शंकित तत्त्व तथा निकांक्षित्त्व आदि गुणों से भूषित था; इसलिए सदा सम्यग्दर्शन के अन्दर विशुद्धता रहने के कारण उनके दर्शनविशुद्धि भावना थी।।8।। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र तथा तप–इन चारों आराधनाओं का तथा इन चारों प्रकार की आराधनाओं को पालन करने वालों का वे अच्छी तरह विनय करते थे, इसलिए उनके विनय भावना का पालन था।9।। किसी प्रकार शीलव्रतों में अतीचार नहीं लग जाय, इस रूप से वे शीलव्रतों का पालन करते थे; इसलिए उनके अतिचार रहित शीलव्रतों का पालन रूप भावना थी, वे श्रुतज्ञान का निरन्तर अध्ययन करते थे तथा दूसरों को अध्ययन कराते थे, इसलिए उनके सर्वदा ज्ञानाभ्यास करना रूप भावना थी।।10।। शरीर भोग एवं स्त्री, पुत्र आदि समस्त संसार के पदार्थों से उन्हें प्रति समय संवेग रहता था। इसलिए वे संवेग भावना का पालन करते थे, अन्य मुनियों को सिद्धान्त का रहस्य प्रदान करते थे, इसलिए शक्ति के अनुसार दान देना रूप उनके भावना थी। ज्ञानावरण आदि समस्त कर्मों को जड़ से नष्ट करने के लिए वे शक्ति को न छिपाकर समस्त तप तपते थे, इसलिए उनके शक्ति के अनुसार तप भावना का पालन था। मुनियों के तप में किसी प्रकार का विघ्न आकर उपस्थित हो जाय तथा उससे उनके आवश्यक कर्म में किसी प्रकार की रुकावट उपस्थित हो जाय तो उनका समाधान कर देना समाधि है। मुनिराज वैश्रवण अच्छी तरह साधुओं को समाधि कराते थे, इसलिए वे पूर्णरूप से साधु समाधि नामक भावना के पालक थे।।11-12।। आचार्य 1, उपाध्याय 2, तपस्वी 3, शैक्ष्य 4, ग्लान 5, गण 6, कुल 7, संग 8, साधु 9 तथा मनोज्ञ 10–इस प्रकार ये दश भेद साधुओं के होते हैं। इन दश प्रकार के साधुओं को दु:ख उपस्थित होने पर उस दु:ख को दूर करने की इच्छा से जो टहल-चाकरी करनी होती है, उस वैयावृत्यकरण नाम की भावना का भी उनके अखण्ड रूप से पालन था। वे मुनिराज मन-वचन एवं काय की शुद्धि रखकर अर्हन्त तथा आचार्यों की पूर्ण भक्ति करते थे। इसलिए उनके अर्हन्त भगवान की भक्ति तथा आचार्य भगवान की भक्ति–ये दोनों भावनायें भी अखण्ड रूप से थीं। वे मुनिराज श्रुतज्ञान की प्राप्ति के लिए बहुत शास्त्रों के जानकार उपाध्यायों की एवं शास्त्रों की भी मन-वचन-काय रूप योगों की शुद्धता से मोक्षरूप स्त्री की सखी स्वरूप अखण्ड भक्ति करते थे, इसलिए उनके बहुतश्रुतभक्ति तथा प्रवचनभक्ति नाम की भी दोनों भावनाओं का अखण्डरूप से पालन था।।14।। सामायिक 1, चतुर्विंशतिस्तव 2, वन्दना 3, प्रतिक्रमाण 4, प्रत्याख्यान 5 तथा कायोत्सर्ग 6–ये छ: भेद आवश्यक क्रियाओं के माने हैं। जहाँ पर हिंसादि समस्त पापयोगों की निवृत्ति है, वह सामायिक नाम का आवश्यक हैं। चौबीसों तीर्थंकरों के गुणों का कीर्तन करना, चतुर्विंशतिस्तव नाम का आवश्यक है। मन-वचन-काय की शुद्धि रखना, दोनों प्रकार के आसनों का उपयोग में लाना, चारों दिशाओं

में चार बार मस्तक का झुकाना तथा प्रत्येक दिशा में तीन-तीन के भेद से बारह आवर्त करना वन्दना है, भूतकाल में लगे हुए दोषों का परिहार करना प्रतिक्रमण, भविष्यत में लगने वाले दोषों का परिहार करना प्रत्याख्यान एवं कुछ परिमित काल का संकल्प कर ''यह मेरा है'' इस रूप से शरीर से ममत्व बुद्धि का त्याग कर देना कायोत्सर्ग है। वे मुनिराज प्रमाद को सर्वथा दूर कर जिस आवश्यक क्रिया का जिस समय में विधान था, उसी समय में उसे परिपूर्ण रूप से करते थे, किन्तु किसी आवश्यक क्रिया की हानि वे कभी नही करते थे, इस रूप से छहों आवश्यकों का पालन होने से वे 'छह आवश्यकों का नियम से पालना' नाम की भावना को भी अच्छी तरह पालते थे।।15।। वे मुनिराज नाना प्रकार के उग्र तपों को तप कर भगवान श्री जिनेन्द्र के शासन का माहात्म्य भी अच्छी तरह प्रदर्शित करते थे; इसलिए मार्ग प्रभावना नाम भावना का भी उनके अच्छी तरह पालन होता था। वे मुनिराज साधर्मी भ्राताओं में गौ-बछड़े के समान अत्यन्त प्रेम रखते थे; इसलिए प्रवचन वात्सल्य नाम की भावना का भी उनके अखण्ड रूप से पालन था।।16।। इस प्रकार वे मुनिराज वैश्रवण तीर्थंकर नाम की प्रकृति के असाधारण कारण दर्शन विशुद्धि आदि सोलह भावनाओं को मन-वचन-काय की शुद्धिपूर्वक सदा अपने मन में भाते रहते थे। दर्शन, विशुद्धि आदि सोलह भावनाओं को भाने से उनके अनन्त कल्याणों का करने वाला एवं तीनों लोक को खलबला डालने वाला **'तीर्थंकर' प्रकृति का बन्ध हो** गया।।18।। सर्वथा अतिचारों से रहित समस्त मूलगुणों का पालन करने वाला उन मुनिराज वैश्रवण के सम्यग्ज्ञानपूर्वक उत्तम तप तपने से अनेक प्रकार की ऋद्धियों का समूह प्रकट हो गया। इस प्रकार अधिक काल तक तप करते-करते मुनिराज वैश्रवण को यह ज्ञान हो गया कि मेरी आयु बहुत ही कम रह गई है तथा इस प्रकार की उत्तम आयु का पाना दुर्लभ है, उन्होंने अन्तकाल में समाधि आदि की सिद्धि के लिए निर्मल परिणामों से संन्यास धारण कर लिया।।19-20।।

उन मनिराज ने समस्त पापों के नाश के लिए साक्षात् मोक्ष प्रदान करने वाली सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र तथा तप—इन चारों आराधनाओं की भक्तिपूर्वक बड़े उत्साह से भावना भाई।।21।। क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण आदि समस्त परीषहों को उत्साह तथा बल से जीतने के कारण यद्यपि उन मुनिराज का शरीर नितान्त कृश हो गया था तथापि भूख-प्यास आदि के कारण उनके चित्त में रंचमात्र भी क्लेश न था, परमात्मपद की प्राप्ति की अभिलाषा से सदा उनका चित्र प्रसन्न रहता था।।22।। मुनिराज वैश्रवण के चित्र से आर्त तथा रौद्रध्यान सर्वथा नष्ट हो चुके थे, सदा धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान का ही चिन्तवन था; इसलिए चित्त को स्थिर कर वे सदा इन्हीं दोनों प्रशस्त ध्यानों को चिन्तवन करते रहते थे, निन्दित ध्यान की ओर स्वप्न में भी उनकी दृष्टि नहीं जाती थी।।23।। अनित्य, अशरण आदि बारह भावनाओं के चिन्तवन करने वाले वे मुनिराज मन की विशुद्धता के लिए सबसे पहले अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा सर्व साधु—इन पाँचों परमेष्ठियों का ध्यान करते थे, तत्पश्चात् जीव-अजीव आदि तत्त्वों का ध्यान करते थे।।24।। पाँचों

परमेष्ठी तथा तत्त्वों के चिन्तवन के बाद वे मुनिराज मन को सर्वथा निश्चल कर चिदानन्द चैतन्य स्वरूप एवं अनन्त गुणों के स्थान अपनी आत्मा का भले प्रकार ध्यान करते थे।।25।। स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु तथा श्रोत–ये पाँच इन्द्रियाँ, मनोबल, वचनबल तथा कायबल–ये तीन बल एवं श्वासेच्छवस तथा आयु– ये दश प्राण हैं। इस प्रकार ध्यान करने वाले योगियों के इन्द्र सदृश मुनिराज वैश्रवण ने प्रसन्न चित्त होकर अन्त में समाधि के द्वारा समस्त लोगों के हितकारी इन दश प्राणों का परित्याग किया।।26।। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र तथा तप के सम्बन्ध से मुनिराज वैश्रवण के महा पुण्य का उदय हो चुका था; इसलिए उस तीव्र पुण्य के उदय से उन्होंने विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित तथा सर्वार्थसिद्धि–ये जो पाँच अनुत्तर विमान हैं उनमें चौथे अपराजित विमान में जन्म लिया तथा वहाँ पर शिला के मध्यभाग में एक अत्यन्त दिव्य कोमल शैय्या बनी हुई है जो कि अपने महा उज्ज्वल श्वेत रत्नों की प्रभा से समस्त अंधकार को नष्ट करने वाली है। उस कोमल शैय्या पर उत्पन्न होकर अहमिन्द्र पद का लाभ किया।।27-28।। अपनी उत्पत्ति काल के दो घड़ी बाद उस अहमिन्द्र ने दिव्य अनुपम तथा महान् ऐसी पूर्ण दिव्यमाला, वस्त्र तथा यौवन अवस्था को प्राप्त भूषणों से स्वयं को भूषित किया। इसके बाद महान ऋद्धि का धारी वह अहमिन्द्र देव उस अनुपम शैय्या से उठा तथा आश्चर्य से विस्मृत हो उसने समस्त दिशाओं में तथा अहमिन्द्रों के विमानों को बड़े ध्यान से देखा। उसके बाद उसे क्षणभर में अवधिज्ञान प्राप्त हो गया एवं ''पहले जन्म में मैंने रत्नत्रय व्रत तथा उत्तम तप का आचरण किया था, उसका यह फल है''–ऐसा अवधिज्ञान के बल से जान लिया, जिससे उसका समस्त आश्चर्य दूर हो गया।।29-31।। ग्रन्थकार उपदेश देते हैं कि व्रत का माहात्म्य बड़ा ही आश्चर्यकारी है। देखो! कहाँ तो राजा वैश्रवण का जीव मुनि अवस्था में था तथा कहाँ जाकर **अपराजित** नाम के अनुत्तर विमान में महान् ऋद्धि का धारक **अहमिन्द्र** हो गया, इसलिए सत्पुरुषों को चाहिए कि वे यह परम आश्चर्यकारी व्रत का माहात्म्य अच्छी तरह विचार कर सदा अपनी उत्कृष्ट बुद्धि को धर्म के अन्दर ही लगावें–किसी भी अवस्था में धर्म के स्वरूप को न विसारें।।32।। जिस समय उस अहमिन्द्र को अपने स्वरूप का पूर्णरूप से ज्ञान हो गया, तब वह सबसे पहले भगवान श्री जिनेन्द्र के मन्दिर में गया तथा वहाँ स्मरण करते ही सामने आने वाले अनुपम मनोहर ऐसे जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप तथा फल रूप दिव्य सामग्री से बड़ी-बड़ी ऋद्धियों के धारक कारण अहमिन्द्रों के साथ भगवान श्री जिनेन्द्र की भक्तिपूर्वक महापूजा की।।33-34।। महापूजा के बाद बड़ी भक्ति से भगवान को नमस्कार किया, ललित शब्दों में स्तुति की, अत्यन्त आश्चर्य करने वाला उत्सव किया। जिससे उसे बहुत प्रकार के पुण्य की प्राप्ति हुई; तत्पश्चात् वह अपने स्थानस्वरूप विमान में आ गया।।35।। वह अहमिन्द्र का जीव निर्मल स्फटिकमयी रिझाने वाले अत्यन्त सुन्दर, समस्त प्रकार की ऋद्धियों से व्याप्त उत्कृष्ट तथा संख्यात योजन चौड़े अपने विमान में उत्तमोत्तम वन तथा उपवन आदि में क्रीड़ा पर्वतों में तथा

ऊँचे-ऊँचे महलों में अहमिन्द्रों के साथ मनमानी आनन्द क्रीड़ा करता था, कभी-कभी बिना बुलाये स्वयं आये हुए अन्य अहमिन्द्रों के साथ महान **'जैन धर्म'** पर विचार करने वाली गोष्ठी करता था।।36-38।। स्वभाव से ही सुन्दर अतएव मनोहर उस विमान में जितना उन अहमिन्द्रों का घनिष्ठ प्रेम था, उतना पृथ्वी के अन्य किसी स्थान पर उनका प्रेम नहीं था।।39।। वहाँ पर 'अहमिन्द्रः, अहमिन्द्रः' अर्थात् मैं इन्द्र हूँ, मैं इन्द्र हूँ, मुझसे बढ़कर कोई भी इन्द्र नहीं सदा ऐसा विचार हृदय में उछलता रहता है—इसलिए सर्वदा ऐसा मन के अन्दर विचार रखने से वे अपनी उन्नति से उत्पन्न स्वाधीन सुख का भोग करते हैं।40।। समस्त इन्द्रों के भोग तथा उपभोग समान रूप से होते हैं—रंचमात्र कमी-बेशी नहीं होती। उनकी दिव्य मूर्ति भी समान होती है—जो एक की मूर्ति होगी, वही दूसरे की होगी, रंचमात्र भी उनमें भेद नहीं हो सकता। समस्त अहमिन्द्रों का ज्ञान भी समान रहता है। कला, प्रताप, कीर्ति, कल्याण एवं उत्तम गुण भी सबों के समान ही होते है। सबों का प्रेम भी समान ही होता है। महान ऋद्धियों का स्वामीपन भी सबों का एक-सा है। धर्म में तत्परपना भी सबों का समान हैं। सदा शुद्ध आशय रखने वाले उन अहमिन्द्रों के उत्कृष्ट शुक्ल लेश्या भी समान हैं तथा समान रूप से चारित्र के पालने से जायमान पुण्य के विपाक से समस्त अहमिन्द्र अत्यन्त सुन्दर होते हैं; इस रूप से समस्त अहमिन्द्र सब बातों में समान हैं, किसी प्रकार की हीनाधिकता नहीं तथा वे समस्त अहमिन्द्र मोक्षगामी हैं, अधिक से अधिक दो बार मनुष्य भव धारण कर वे नियम से मोक्ष चले जाते हैं।।41-43।। स्वर्गों के अन्दर जो सुख देव रूप से इन्द्रों को प्राप्त हैं, उस सुख की अपेक्षा अपरिजित विमानवासी अहमिन्द्रों का सुख असंख्यात गुणा अधिक है एवं वह सुख प्रवीचार (मैथुन) की अभिलाषा से रहित है, अर्थात् सोलह स्वर्ग पर्यन्त देवों का सुख तो प्रवीचारजनित हैं उनमें सौधर्म एवं ऐशान स्वर्ग निवासी देव मनुष्यों के समान शरीर से मैथुन सेवन करते हैं, आगे के स्वर्गों के देवों में कोई-कोई अपनी देवांगनाओं के स्पर्शमात्र से ही तृप्त हो जाते हैं, कोई-कोई रूप देखकर, तो कोई-कोई भूषणों का शब्द सुनकर एवं कोई-कोई अपनी देवांगनाओं का मन में स्मरण करने से ही तृप्त हो जाते हैं; किन्तु सोलह स्वर्गों के आगे के देवों में प्रवीचार का कोई सम्बन्ध नहीं, वे प्रवीचार रहित हैं; इसलिए अपराजित विमानवासी देव भी प्रवीचार रहित दिव्य सुख के भोगने वाले हैं।।44।। पुण्य से जायमान संसार में जो भी उत्कृष्ट सुख माना गया है, वह समस्त शान्ति स्वरूप एवं अंतरंग से जायमान सुख अहमिन्द्रों के मौजूद है।।45।। मुनिराज वैश्रवण के जीव अहमिन्द्र का शरीर साक्षात् तेज का पुंज ही हो, ऐसा था। स्वभाव से ही सुंदर था एवं सब प्रकार की माला, उत्तमोत्तम भूषणों एवं वस्त्रों से अत्यन्त सुशोभित था तथा वह एक हाथ ऊँचा था, महामनोहर था। अपनी अनुपम कान्ति से समस्त दिशाओं को जगमगा देने वाला था, पुण्य की साक्षात् मूर्ति के समान अत्यन्त सुभग था एवं विक्रिया से रहित था।46-47।। उस अहमिन्द्र की तैंतीस सागर की आयु थी। सदा वह शुभ ध्यान में लीन रहता था एवं उसके नेत्र स्पन्दन क्रिया से रहित निर्निमेष थे, इसलिए वह ऐसा जान

पड़ता था, मानो ध्यान क्रिया में तल्लीन कोई साक्षात् मुनि है।।48।। जिस समय तीस हजार वर्ष व्यतीत हो जाते थे, उस समय वह मन से संकल्पित दिव्य आहार ग्रहण करता था, जो कि अत्यन्त सुख प्रदान करने वाला था।।49।। वह पुण्यात्मा अहमिन्द्र जब तैंतीस पक्ष बीत जाते थे, तब थोड़ा-सा उच्छ्वास लेता था एवं वह इतना उत्कट सुगन्धित होता था कि उसकी सुगन्धि से समस्त दिशाएँ भी महक जाती थीं–समस्त दिशाओं में सुगन्ध ही सुगन्ध फैल जाती थी।।50।। वह महाप्रतापी अहमिन्द्र तीन सौ तैंतालीस योजन घनाकार लोक नाड़ी के अन्दर जितने स्थावर जंगम मूर्तिक पदार्थ भरे हुए हैं, अपने दिव्य अवधिज्ञान रूपी नेत्र से भरे लोक नाड़ी के अन्दर का ऐसा कोई भी मूर्तिक पदार्थ बाकी नहीं बचा था, जिसे वह अपने अवधिज्ञान से नहीं जानता हो।।51।। उस अहमिन्द्र के अवधिज्ञान का विषय लोकनाड़ी बतलाया है, इसलिए जितना क्षेत्र उसके अवधिज्ञान का विषय है, उतने क्षेत्र तक ही वह अपनी विक्रिया ऋद्धि के बल से गमन, आगमन आदि समस्त क्रियाओं को करने में समर्थ था, तथापि वह स्वभाव से ही स्थिर चित्त का धारक था, समस्त कार्य आदि से रहित था, उसे कोई भी कार्य करना नहीं था; इसलिए कभी भी विक्रिया शक्ति को वह काम में नहीं लाता था एवं कहीं भी जाने-आने की उसकी इच्छा नहीं होती थी; इसलिए वह कहीं पर भी जाना-आना नहीं करता था, अपने निजी स्थान में ही अनेक प्रकार की क्रीड़ाओं को करता हुआ आनन्द से रहता था।।52-53।। अपने स्थान पर रह कर केवल क्रीड़ा कोतूहलों में ही वह दिन नहीं बिताता था; किन्तु अपने अवधिज्ञान के बल से कृत्रिम, अकृत्रिम चैत्यालयों को भली प्रकार जानकर उनमें विराजमान भगवान श्री जिनेन्द्र के प्रतिबिम्बों को सदा भक्तिपूर्वक नमस्कार करता था।।54।। जिस समय तीर्थंकरों के गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, निर्वाणरूप पाँचों कल्याणकों का समारोह होता था, उस समय भी वह पुण्यात्मा अहमिन्द्र धर्म की प्राप्ति की अभिलाषा से तीर्थंकरों को भक्तिपूर्वक नमस्कार करता था एवं चित्त के अन्दर उनके गुणों के प्रति बड़ी विनय करता था।।55।। जिस समय उसे अवधिज्ञान के बल से सामान्य मुनियों के ज्ञान कल्याणक का भी पता लगता था, उस समय उन्हें भी वह शक्ति के भार से नम्रीभूत होकर सदा मस्तक झुकाकर नमस्कार करता था।।56।। इस प्रकार अनेक प्रकार से धर्म की आराधना करता हुआ वह महान ऋद्धि का धारी अहमिन्द्र कल्याण के समुद्र स्वरूप उस अहमिन्द्र पद के सुख में सदा निमग्न रहता था एवं उस समय उसे किसी प्रकार की चिन्ता नहीं करनी पड़ती थी–वह वहाँ निश्चिन्त होकर सुख से काल व्यतीत करता था।।57।।

अनेक महापुरुषों के स्थान स्वरूप इसी भरत क्षेत्र में अत्यन्त मनोहर एक बंग (बंगाल) देश है, जो कि पृथ्वी पर अत्यन्त विख्यात है, धर्म का परम स्थान है एवं धन-धान्य आदि से समृद्ध होने के कारण अत्यन्त महान है।।58।। उस समय उस देश के पत्तन, खेट, पुर एवं ग्राम आदि में धर्मात्मा लोग निवास करते थे। जगह-जगह पर भगवान श्री जिनेन्द्र के मन्दिर जगमगाते थे, इसलिए वह देश उस समय धर्म की खानि सरीखा जान पड़ता था। इस बंग देश के स्वभावसिद्ध

वन मुनियों के आचार सरीखे जान पड़ते थे, क्योंकि जिस प्रकार मुनियों आचार मनोहर आनन्द को प्रदान करने वाले होते हैं, उसी प्रकार ये वन भी अत्यन्त मनोहर थे। जिस प्रकार मुनियों के आचार फल विशिष्ट होते हैं, स्वर्ग मोक्ष आदि फलों के प्रदान करने वाले होते हैं, उसी प्रकार वे वन भी फल विशिष्ट थे—नारंगी, सन्तरा, अनार, अंगूर आदि उत्तमोत्तम फलों से सदा लदे रहते थे एवं जिस प्रकार मुनियों के आचार तुंग (उच्च) होते हैं, उसी प्रकार वे वन भी बड़े ऊँचे-ऊँचे एवं विशाल थे।।60।। उस बंग देश की वापियाँ भी मुनिराज के चित्तों के समान पवित्र थीं, क्योंकि जिस प्रकार मुनियों के चित्त तृष्णा एवं उससे जायमान क्लेश से रहित हैं, उसी प्रकार वे वापियाँ भी तृष्णा एवं उससे जायमान क्लेश से रहित थीं, अर्थात् उन्हें देखते ही लोगों की तृष्णा एवं उससे जायमान क्लेश दूर भाग जाता था। जिस प्रकार मुनियों के चित्त परम शीतल एवं निज स्वरूप में लीन रहते हैं, उसी प्रकार वे वापियाँ परम शीतल एवं अपने परिमित स्वरूप में विराजमान थीं।।61।। संसार में वास्तविक धर्म की प्रवृत्ति हो, इस अभिलाषा से मोक्षाभिलाषी भव्यों पर उपकार वृद्धि से प्रेरित हो सदा वहाँ अपने संघ के साथ मुनिगण विहार करते थे।।62।। वहाँ कोई-कोई पवित्र तीर्थों की यात्रा की तैयारियाँ करते थे। कोई-कोई धर्म की प्रभावना करने वाले कार्य करते थे एवं कोई-कोई भगवान श्री जिनेन्द्र की पूजा आदि का बड़े ठाट-बाट से समारोह करते थे; इसलिए उस देश में तीर्थ-यात्रा, धर्म-प्रभावना एवं भगवान श्री जिनेन्द्र की पूजा आदि का उत्सव सदा होता रहता था।।63।। उस बंग देश में उत्पन्न होने वाले कोई-कोई विद्वान पुरुष घोर तपों को तप कर मोक्ष प्राप्त करते एवं कोई वास्तविक रूप से गृहस्थ धर्म के पालन करने वाले पुरुष, उस गृहस्थ धर्म की कृपा से जहाँ पर लौकान्तिक देवों का निवास स्थान है, ऐसे पाँचवें स्वर्ग में जाकर जन्म धारण करते थे।।64।। कोई-कोई महानुभाव उत्तम पात्रों में आहार आदि दानों के देने से सदा सुखस्वरूप भोग-भूमि के सुख का रसास्वादन करते थे एवं कोई-कोई पुण्यात्मा भक्तिपूर्वक भगवान श्री जिनेन्द्र आदि की पूजा कर दिव्य इन्द्र पद प्राप्त करते थे।।65।। बंग देश में उस समय जैन-धर्म का ही सर्वत्र प्रचार था एवं उसके द्वारा लोग सदा स्वर्ग एवं मोक्ष पदों को प्राप्त करते थे, इसलिए परम धर्म के स्थान एवं स्वर्ग मोक्ष के कारण उस देश में सदा अमृत पान करने वाले देवगण भी जन्म धारण करने की अभिलाषा करते थे।।66।।

इस प्रकार उत्तम वर्णन के धारक **बंग देश** में एक **मिथिला नाम** की नगरी है, जो कि मनुष्य के शरीर में नाभि (टुंडी) के समान ठीक उस देश के मध्य भाग में है। अपनी अनुपम शोभा से स्वर्गपुरी के समान है एवं सर्वत्र धर्मात्मा लोगों से भरी रहने के कारण अत्यन्त शोभायमान जान पड़ती है।।67।। जिस प्रकार ऊँचे-ऊँचे परकोटे, विस्तीर्ण वीथियाँ (गलिया) एवं गहरी खाइयों से भूषित अयोध्या की शोभा शास्त्र में वर्णित है, उसी प्रकार मिथिलापुरी में भी उस समय बड़े ऊँचे-ऊँचे परकोटे थे। विस्तीर्ण वीथियाँ थीं एवं चारों ओर गहरी खाई थी; इसलिए वह साक्षात् अयोध्या सरीखी जान पड़ती थी तथा उसमें अयोध्या के समान बड़े-बड़े वीर पुरुषों

का निवास स्थान था; इसलिए वह शत्रुओं के लिए अगम्य थी, कोई भी शत्रु उस समय उसकी ओर नेत्र उठाकर भी नहीं देख सकता था।।68।। उस मिथिलापुरी के बड़े-बड़े महलों के अग्रभागों मं रंग-बिरंगी अनेक ध्वजाएँ लगी हुई थीं एवं उनके वस्त्र पवन के झकोरों से फहरा रहे थे, उससे ऐसा जान पड़ता था कि अनेक प्रकार की ऋद्धियों से शोभायमान मिथिलापुरी अपनी ऋद्धियों का भोग कराने के लिए देवों को बुला रही हो।।69।। बड़े-बड़े ऊँचे तोरणों से भूषित एवं अटारियों से शोभायमान भगवान श्रीजिनेन्द्र के मन्दिरों की पंक्तियाँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो वे साक्षात् धर्म के समुद्र हैं—कोई भी आकर उनमें धर्मलाभ कर सकता है, इसलिए जिन-मन्दिरों की पंक्तियों से वह मिथिलापुरी उस समय अत्यन्त शोभायमान थी। मिथिलापुरी के जिन-मन्दिरों में सुवर्णमय एवं रत्नमय प्रतिबिम्ब विराजमान थे। सदा उनमें गीत, नृत्य एवं स्तुतियाँ आदि हुआ करते थे। छत्र, चमर आदि दिव्य उपकरण भी जगह-जगह मन्दिरों की शोभा बढ़ाते थे। नौबत (बाजे) फिरा करती थीं एवं धर्मात्मा लोगों का सदा आवागमन बना रहता था; इसलिए वे मन्दिर बड़े रमणीक जान पड़ते थे।।70-71।।

उस समय मिथिलापुरी में उत्तम पात्रों को दान देने से तीव्र पुण्य का बन्ध होता था; इसलिए उसके फल स्वरूप रत्न, पुष्प एवं गन्धोदक आदि की वर्षा होती रहती थी तथा अन्य भी नाना प्रकार के मांगलिक कार्य हुआ करते थे; इसलिए वह मिथिलापुरी अनेक महोत्सवों से सदा जगमगाती रहती थी।।72।।उस मिथिलापुरी के रहने वाले पुरुष भगवान श्री जिनेन्द्र एवं गुरुओं के परम भक्त थे। अनेक प्रकार के ज्ञान-विज्ञान-कला-कौशलों के जानकार थे। सदा आहार आदि दानों के देने से परम दानी थे, धर्मात्मा एवं शीलवान थे। उत्तमोत्तम व्रतों के आचरण करने वाले थे। जो मार्ग पुण्य प्राप्ति कराने वाला था, उसी के अनुयायी थे, पापवर्धक मार्ग का कभी अनुगमन नहीं करते थे, परम सम्यग्दृष्टि थे, जैन-धर्म के परम श्रद्धानी थे, अत्यन्त विनयी एवं सदा शुद्धचित्त के धारक थे, धर्मानुकूल भोगों को भोगने वाले थे, धर्म को ही सब कुछ मानने वाले थे, शूरवीर थे एवं अच्छे-बुरे विचारों के करने में अत्यन्त प्रवीण थे। जिस प्रकार पुरुषों के अन्दर गुण थे, उसी प्रकार स्त्रियों के अन्दर भी गुण थे, अर्थात् वे भी पुरुषों के ही समान भगवान श्रीजिनेन्द्र एवं गुरुओं की भक्त थीं एवं अनेक प्रकार के कला-कौशलों की जानकार थीं। इस प्रकार पहले जन्म में कमाए गए पुण्य के उदय से महान कुलों में उत्पन्न वे स्त्री-पुरुष उस मिथिलापुरी के ऊँचे-ऊँचे महलों में बड़े आनन्द से निवास करते थे।।73-75।।

इस प्रकार उत्तम वर्णनों से समृद्ध उस मिथिलापुरी का राजा **कुम्भ** था, जो कि अनेक राजाओं का शिरोमणि था, पृथ्वी पर प्रसिद्ध था एवं अत्यन्त पुण्यवान था।।76।। वह राजा कुम्भ मति, श्रुति, अवधि—इन तीन ज्ञानों का धारक था। हितकारी एवं परिमित वचनों के बोलने के कारण वाग्मी था। इक्ष्वाकु वंश रूपी आकाश के लिए दैदीप्यमान सूर्य था। सदा न्याय-मार्ग का अनुसरण करने वाला था एवं काश्यप गोत्र का तिलक स्वरूप था।।77।। समस्त लोक के

आभूषण, दिव्य एवं मनोहर वस्त्र, माला, तेजस्विता एवं मनोहरता से उसका शरीर शोभायमान था। वह अत्यन्त धर्मात्मा था, उत्तम आचरण का पालने वाला एवं पदार्थों के स्वरूप का भली प्रकार जानकार था।।78।। उत्तमोत्तम पात्रों को आहार आदि दान देने के कारण दाता था। धर्मानुकूल भोगों को भोगने वाला होने के कारण भोक्ता था। राज कार्य में अत्यन्त प्रणीण था। अहिंसादि पाँच अणुव्रत एवं तीन गुणव्रत एवं चार शिक्षाव्रत–इस प्रकार सात प्रकार की शीलव्रत एवं अन्यान्य व्रतों का भी भली प्रकार आचरण करने वाला था। भगवान श्री जिनेन्द्र का परम भक्त था, विवेकी एवं सम्यग्दृष्टि था। समस्त लोक का प्यारा था एवं महान था।।79।। वह महानुभाव कुम्भ नाम का राजा चक्रवर्ती के समान था; क्योंकि चक्रवर्ती जिस प्रकार समस्त प्रकार की ऋद्धियों से विभूषित रहता है, उसी प्रकार यह राजा भी अनेक प्रकार की रिद्धि–विभूतियों से विभूषित था। चक्रवर्ती का जिस प्रकार सब लोग आदर-सत्कार करते हैं, उसी प्रकार राजा कुम्भ का भी सब लोग आदर-सत्कार करते थे एवं उन्हें मानते थे। चक्रवर्ती जिस प्रकार नीति-मार्ग से प्रजा की रक्षा करता है, उसी प्रकार राजा कुम्भ भी नीति-मार्ग से प्रजा का पालन करता था तथा वह राजा चक्रवर्ती के समान अत्यन्त पुण्यवान एवं महान जैन-धर्म का संसार में सर्वत्र प्रवर्तन करने वाला था।।80।।

महानुभाव राजा कुम्भ की प्राणों से भी अतिशय प्यारी **प्रजावती नाम की पटरानी** थी, जो कि समस्त शुभ-लक्षणों के कारण शरीर से शुभ थी एवं दैदीप्यमान प्रभा के धारक अनेक प्रकार के आभूषणों से भूषित थी। महादेवी प्रजावती के दशों नखरूपी चन्द्रमा की किरणों से शोभित दिव्य दोनों चरण कमल थे। केला के खम्भों के समान अत्यन्त मनोहर दोनों जंघायें थीं।।81-82।। करधनी महामनोहर एवं सारभूत किरणों से उसका कटिभाग अत्यन्त जाज्वल्यमान था। उसका उदर अत्यन्त पतला होने से वह कृशोदरी थी। उसकी नाभि भीतर में चक्करदार एवं गोल थी और दोनों उरोज अत्यन्त मनोहर थे।।83।। उसका उदर व वक्षःस्थल महामूल्यवान हीरों से युक्त होने के कारण जगमगाता था। एवं उसके अत्यन्त कोमल महा मनोहर दोनों हाथ मुद्रिका एवं कड़ों से अत्यन्त शोभायमान जान पड़ते थे।।84।। संसार के समस्त उत्तमोत्तम आभूषणों की कान्ति से उसका सारा अंग अत्यन्त दैदीप्यमान था। कण्ठ अत्यन्त मनोहर था; इसलिए उसका बहुत ही मीठा एवं मनोहर स्वर था एवं उसका महामनोहर मुख तेजोमयी लावण्य से दैदीप्यमान था एवं कान्ति के घर कपोलों से भूषित था।।85।। उसके नेत्ररूपी कमल महामनोहर थे; ऊँची नासिका थी, सुन्दर भृकुटियाँ थीं, उसके दोनों कान आभूषणों से जाज्वल्यमान थे, भौरों के समान काले केश थे एवं सुन्दर ललाट से वह शोभायमान थी।।86।। वह महारानी प्रजावती महामनोहर वस्त्रों की पोशाक पहनती थी। माला आदि का मण्डन करती थी, समस्त दिव्य गुणों से परिपूर्ण थी; अतएव महारूपवती एवं समस्त लोक में वन्दनीय थी।।87।। अनेक प्रकार की कलाएँ, विज्ञान, ज्ञान एवं सौभाग्य से शोभायमान थी, भगवान श्री जिनेन्द्र के गुणों में अत्यन्त भक्ति करती थी, सदाचार का

आचरण करती थी, अत्यन्त विनय करने वाली एवं महासती थी। पुण्य के उदय से उसे भाँति-भाँति के दिव्य भोग एवं उपभोग आदि प्राप्त थे; इसलिए उसके समस्त मनोरथों की सिद्धि होती थी। वह महारानी प्रजावती समस्त पवित्र कार्यों को करने वाली थी, हर एक बात में अत्यन्त चतुर थी एवं व्रत शील आदि का भले प्रकार पालन करने वाली थी।।88-89।। जिस प्रकार सरस्वती देवी का सब लोग आदर-सत्कार करते हैं एवं उसे मानते हैं, उसी प्रकार महारानी प्रजावती को भी सब लोग बड़े आदर की दृष्टि से देखते थे। वह रूप, लावण्य, सौभाग्य एवं सुखरूपी समुद्र के पार को प्राप्त थी अर्थात् परम रूपवती थी, पर लावण्यवती थी एवं परम सुख को भोगने वाली थी।।90।। इस प्रकार उत्तमोत्तम गुणों की स्थान उस महारानी प्रजावती के साथ वह राजा कुम्भ तृप्ति के देने वाले एवं निज पुण्य से प्राप्त नाना प्रकार के भोगों को यथाकाल बड़े स्नेह के साथ निरन्तर भोगने लगा।।91।।

राजा वैश्रवण का जीव अपराजित विमान में जाकर अहमिन्द्र हुआ था, जब उसकी आयु की समाप्ति में केवल छः मास का समय बाकी रह गया—उस समय वह भगवान श्री मल्लिनाथ तीर्थंकर होने वाला था। तीर्थंकर भगवान के जन्म से पन्द्रह मास पहले उनकी जन्म भूमि में कुबेर द्वारा रत्नों की वर्षा होने लगती है। यह नियम है, इसलिए इन्द्र ने मिथिलापुरी जाने के लिए कुबेर को आज्ञा दी एवं इन्द्र की आज्ञानुसार वह शीघ्र ही मिथिलापुरी आकर उपस्थित हो गया।।92।। मिथिलापुरी में आकर उसने हस्ती के सूँड की आकार की, पुष्प एवं जलकणों से व्याप्त अमूल्य अनेक प्रकार के रत्नों की मोटी-मोटी धारायें वर्षानी प्रारम्भ कर दीं, जिनमें कि बरसने वाली मणियों की प्रभा से समस्त अन्धकार नष्ट हो जाता था। इस प्रकार उस दिन से वह कुबेर राजा एवं रानी के मनोहर महल में बड़े आनन्द से रत्नों की वर्षा करने लगा।।93-94।। उस समय राजा कुम्भ के समस्त आँगन को रत्न एवं सुवर्ण आदि से परिपूर्ण देखकर मनुष्यों ने उसे साक्षात् धर्म का प्रसाद समझा एवं उस दिन से उन्होंने धर्म के अन्दर विशेष रूप से चित्त लगाया।।95।। वह कुबेर पुण्य फल की प्राप्ति की अभिलाषा से प्रतिदिन रत्न वृष्टि करता था; इसलिए छः मास पर्यंत वह राजा कुम्भ के महल को सुवर्ण एवं रत्नों से प्रतिदिन भर दिया करता था।।96।।

कदाचित् महारानी प्रजावती अपने शयनागार में अत्यन्त कोमल मनोहर शैय्या पर सो रही थी कि अकस्मात् जब रात्रि का कुछ ही भाग शेष रहा गया, उस समय उसने महामनोहर सोलह स्वप्न देखे। सबसे पहले स्वप्न में उसने इन्द्र का ऐरावत गजराज (1) देखा जो कि महामनोहर व अत्यन्त विशाल था। उसके बाद बड़े ऊँचे-ऊँचे बैल (2) देखा जो कि अत्यन्त श्वेत कांति का धारक था। उसके बाद अत्यन्त पराक्रमी सिंह (3) देखा जो कि चन्द्रमा की कांति के समान तेज का धारक था। उसके बाद लक्ष्मी (4) देखी जो कि महामनोहर सिंहासन पर दुग्ध के घड़ों से स्नान कराई जा रही थी। उसके बाद दो पुष्प मालाएँ (5) देखी, जिनकी सुगंधि से समस्त दिशाएँ सुगंधित थीं। उसके बाद आकाश में महामनोहर अखण्ड चंद्रमा (6) देखा, जो कि अपने

परिकर ताराओं के समूह से विभूषित था। उसके बाद अत्यन्त दैदीप्यमान सूर्य (7) देखा, जिसकी प्रभा से समस्त अन्धकार विनष्ट हो रहा था। उसके बाद दो सुवर्णमयी घट (8) देखे, जिनका कि मुख कमलों से ढका हुआ था। उसके बाद कमलों से परिपूर्ण सरोवर में किलोल करता हुआ मीनों का जोड़ा (9) देखा, उसके बाद विशाल स्थिर सरोवर (10) देखा, जो कि सर्वत्र कमलों से विभूषित था। उसके बाद उफनता हुआ समुद्र (11), देखा, जिसका जल तीर से भी ऊपर बहता था। उसके बाद एक सुवर्णमय महामनोहर सिंहासन (12) देखा, उसके बाद देवों का स्थान स्वर्ग (13) देखा, जो कि अपनी जगमगाती हुई कांति से अत्यन्त शोभायमान था, उसके बाद नागेन्द्र का भवन (14) देखा, जो कि कांति से जगमगाता हुआ अत्यन्त विशाल था, उसके बाद जगमगाती हुई रत्नों की राशि (15) देखी, जिनकी उग्र प्रभा से अन्धकार तक दीख नहीं पड़ता था, उसके बाद जलती हुई अग्नि की शिखा (16) देखी, जिसमें धुआँ का नामोनिशान तक भी न था।।97-101।। जिस समय वह महादेवी उपर्युक्त सोलह स्वप्न देख चुकी, उस समय अन्त में उसने क्या देखा कि एक अत्यन्त सुंदर शरीर से शोभायमान विशाल गजराज उसके मुख कमल में प्रवेश कर रहा है।

रानी प्रजावती के तीव्र पुण्य के उदय से पहले तो रत्न सुवर्ण आदि पदार्थों की वर्षा हुई, जिससे उसके कुटुम्बीजन, अन्य मनुष्य, बड़े-बड़े देव उसका आदर-सत्कार करने लगे एवं उन्होंने समस्त सौभाग्य का सार प्राप्त किया। उसके बाद उस महारानी प्रजावती ने भगवान जिनेन्द्र की उत्पत्ति को सूचित करने वाले उपर्युक्त सोलह स्वप्न देखे, जिससे रनिवास के अन्दर अनेक रानियों के रहते हुए भी उनकी शिरोमणि पटरानी वही हुई।।103।। स्वर्ग एवं मोक्ष को प्रदान करने वाले, समस्त विघ्नों के नाशक, मोक्षलक्ष्मी के अभिलाषी जीवों को धर्म मार्ग पर चलने वाले, ज्ञानावरण आदि समस्त कर्मरूपी बैरियों को समूल से नष्ट करने वाले, अखण्ड ज्ञान के विधाता एवं जयशील वे भगवान श्री मल्लिनाथ हमारे लिए सिद्धि प्रदान करें।।104।।

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति द्वारा संस्कृत भाषा में श्री मल्लिनाथ चरित्र की पं. गजाधरलाल जी न्यायतीर्थ विरचित हिन्दी वचनिका में अहमिन्द्र भव का वर्णन करने वाला तीसरा परिच्छेद समाप्त हुआ।।3।।

चतुर्थ परिच्छेद

इन्द्रनीललसत्कायं मुक्तिकांता प्रियंकरं।
त्रिजगत्स्वामिनं वंदे, पार्श्वनाथं जगद्धितं॥

जिनके शरीर की कांति इन्द्रनील मणि के रंग के समान महामनोहर है, जो मोक्षरूपी लक्ष्मी के परम प्यारे हैं, तीनों लोक के स्वामी हैं एवं समस्त जगत् का हित करने वाले हैं, ऐसे श्री पार्श्वनाथ भगवान को मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ।।1।। यह प्राचीन प्रथा है कि महाराज एवं महारानियों का जो समय जगाने का होता है, उस समय मधुर शब्द करने वाले वाद्य बजाये जाते हैं एवं बंदीगण स्तुति गान करते हैं, उनके शब्द से महाराज एवं महारानी की निद्रा भंग होती है एवं उस समय वे उठकर अपनी प्रातःकाल की नित्यक्रिया में प्रवृत्त होते हैं। प्रातःकाल में जिस समय महारानी **प्रजावती** के उठने का समय उपस्थित हुआ, उस समय उसे जगाने वाले उत्कृष्ट एवं महामनोहर शब्द करने वाले तूर्य जाति के वाद्य बजने लगे तथा बंदीगणों के द्वारा अत्यन्त मंगल को सूचित करने वाली महामनोहर अनेक प्रकार की स्तुतियाँ की जाने लगीं। महारानी प्रजावती उस समय सूक्ष्म निद्रा में निद्रित पलंग पर लेटी हुई थीं। ज्योंही प्रातःकाल में उसने महामनोहर भेरी का शब्द सुना, समस्त जगत् का मंगल करने वाली वह पलंग से उठकर बैठ गई।।2-3।। कुछ समय बाद शांतिपूर्वक उसने पलंग का परित्याग किया एवं वह देवी समस्त जगत् के मंगल सिद्धि की कामना से सामायिक आदि की क्रियाओं के द्वारा धर्मध्यान का आचरण करने लगी।।4।। सामायिक आदि नित्य क्रियाओं के बाद उसने प्रसन्नचित्त से स्नान किया। उत्तमोत्तम आभूषणों से अपने शरीर को अलंकृत किया एवं कुछ विशिष्ट मनुष्यों के साथ हृदय में अत्यन्त प्रमोद धर कर वह राजसभा की ओर चल दी।।5।। इस प्रकार ठाट-बाट से राजसभा में आने वाली अपनी परम प्यारी महारानी प्रजावती को देख कर राजा कुम्भ बड़ा प्रसन्न हुआ। महामनोहर शिष्टाचारपूर्ण वचनों के द्वारा उसे परम सन्तुष्ट किया एवं बड़े आनन्द से आधा सिंहासन उसके बैठने के लिए प्रदान किया। अपने स्वामी राजा कुम्भ द्वारा इस प्रकार का सम्मान पा रानी प्रजावती का मुख आनन्द से पुलकित हो उठा, वह सुखपूर्वक आसन पर बैठ गई एवं दिव्य आसन से कुछ उठकर अपनी दिव्य वाणी से आनन्द से गद्‌गद् होकर इस प्रकार अपने स्वामी से निवेदन करने लगी–'हे देव! आज प्रातःकाल जब कि रात्रि का कुछ ही भाग शेष रहा गया था, उस समय मैं पलंग पर सुखपूर्वक सो रही थी, अचानक ही अत्यन्त शुभ फल के प्रदान करने वाले गजेन्द्र आदि के सोलह स्वप्न मुझे दीख पड़े हैं। स्वामिन्! उन पवित्र स्वप्नों का फल क्या है? कृपा कर उन समस्त फलों को मुझे बतलाइए–मुझे उन फलों के जानने की बड़ी भारी अभिलाषा एवं उत्कण्ठा है।' फलों को जानने के लिए रानी को इस प्रकार उत्कण्ठित देखकर राजा कुम्भ बड़ा प्रसन्न हुआ

एवं प्रिय वचनों से वह इस प्रकार कहने लगा–हे प्राणप्यारी! तुम चित्त को स्थिर कर सुनो–मैं उन स्वप्नों का विस्तार से फल कहता हूँ।।7-9।।

देवि! स्वप्न में जो तुमने विशाल गजराज देखा है; उसका फल यह है कि तुम्हारे एक महान पुत्र होगा, जिसे बड़े-बड़े ऋषिधारी देव आकर पूजेंगे एवं अपने को धन्य समझेंगे। विशाल बैल के देखने का यह फल है कि तुम्हारा पुत्र ज्येष्ठ होगा–समस्त लोक उसे बड़ा मानेगा एवं उसकी आज्ञा का पालन करेगा एवं वह धर्म की धुर का धारण करने वाला अर्थात् धर्म का स्वामी होगा। स्वप्न में जो सिंह देखा है, उसका फल यह है कि वह पुत्र, जिस प्रकार सिंह बलशाली होता है, उसी प्रकार अनन्त बल का धारक होगा, दो मालाएँ जो देखी हैं, उनका फल यह है, वह धर्मतीर्थ का प्रवर्तक होगा। दुग्ध के घड़ों से स्नान करती हुई जो लक्ष्मी देखी है, उसका फल यह है कि बड़े-बड़े देव आकर तुम्हारे पुत्र को मेरु पर्वत के मस्तक पर ले जाकर स्नान करावेंगे। स्वप्न में जो पूर्ण चन्द्रमा देखा है, उसका फल यह है कि जिस प्रकार चन्द्रमा जीवों को आनन्द प्रदान करने वाला है एवं अन्धकार का नाशक है, उसी प्रकार तुम्हारा पुत्र भी संसार को आनन्द का प्रदान करने वाला एवं मोहरूपी अन्धकार का सर्वथा नाश करने वाला होगा। सूर्य जो देखा है, उसका फल यह है कि जिस प्रकार सूर्य अन्धकार का नाशक है अर्थात् उसके उदय होते ही संसार के घट-पट आदि पदार्थ स्फुट रूप से दीख पड़ते है। एवं सर्वत्र उसकी कांति दैदीप्यमान रहती है, उसी प्रकार तुम्हारा पुत्र भी समस्त अज्ञानरूपी अन्धकार का नाश करने वाला होगा एवं सर्वत्र संसार में उसका प्रताप फैलेगा। दो सुवर्णमय घट जो देखे हैं, उसका फल यह है कि तुम्हारा पुत्र निधियों का स्वामी होगा। किलोल करती दो मीन देखी हैं, उसका फल यह है कि वह पुत्र परम सुख का स्थान होगा। जल से लबालब भरा हुआ जो सरोवर देखा है, उसका फल यह है कि वह पुत्र समस्त मनोहर लक्षणों से पूर्ण होगा। तीर को भेद कर बहने वाले जल से युक्त जो समुद्र देखा है, उसका फल यह है कि तुम्हारा पुत्र लोकालोक को प्रकाशित करने वाले 'केवलज्ञान' का स्वामी होगा। सिंहासन के देखने का फल यह है कि वह साम्राज्य पद के योग्य होगा एवं समस्त जगत् उसे नमस्कार करेगा। स्वप्न में जो विमान देखा है, उसका फल यह होगा कि वह कल्पातीत विमान से तुम्हारे गर्भ में आवेगा। जगमगाता हुआ जो नागेन्द्र का भवन देखा है, उसका फल यह होगा कि वह अवधिज्ञानरूपी नेत्र का धारक होगा, रत्नराशि के देखने का यह फल है कि वह अखण्ड सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र का खजाना होगा। जाज्वल्यमान निर्धूम अग्नि जो देखी है, उसका फल यह है, समस्त जगत् का स्वामी तुम्हारा पुत्र शुक्लध्यानरूपी तीव्र अग्नि में कर्मरूपी काष्ठ को भस्म कर डालेगा तथा सोलह स्वप्नों के अन्त में मुख में प्रवेश करता हुआ गजेन्द्र देखा है, उसका फल यह है कि तुम्हारे निर्मल गर्भ में उन्नीसवें तीर्थंकर भगवान श्रीमल्लिनाथ जिनेन्द्र स्वयं अवतीर्ण होकर निश्चय से जन्म धारण करेंगे।।10-17।। राजा कुम्भ अवधिज्ञान के धारक थे, इसलिए उनके मुख से स्वप्नों का इस प्रकार उत्तम फल

सुनकर महारानी प्रजावती को परमानन्द हुआ एवं मारे आनन्द के उसको उस समय यह मामूल पड़ने लगा मानो साक्षात् पुत्र ही प्राप्त कर लिया हो।।18।।

अथानन्तर माता प्रजावती की सेवा के लिए सौधर्म के इन्द्र की आज्ञा से **श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि एवं लक्ष्मी**–ये छः देवियाँ बड़ी भक्ति से शीघ्र ही मिथिलापुरी आ गईं। ये समस्त देवियाँ भरतक्षेत्र के पद्म आदि सरोवरों के कमलों में रहने वाली हैं एवं परम धर्म की सदा सेवन करने वाली हैं।।19।। मिथिलापुरी में आकर समस्त देवियों ने अत्यन्त निर्मल पदार्थों से माता प्रजावती के गर्भ का शोधन किया एवं जिस समय में जिस कार्य के करने की आवश्यकता होती थी, उसे भक्तिपूर्वक कर वे माता की सेवा एवं आज्ञा का पालन करती थीं।।20।। श्री देवी माता के शरीर के अन्दर अनेक प्रकार की शोभा उत्पन्न करती थीं, ह्री देवी की सेवा से माता के हृदय के अन्दर विशेश रूप से लज्जा का संचार होता था, धृति देवी की कृपा से धीरता-वीरता उत्पन्न हो गई थी, कीर्ति देवी की सेवा से यह गुण प्रगट हुआ कि सर्वत्र उनकी कीर्ति फैल गई थी; इसलिए सब लोग बड़ी भक्ति से उनकी स्तुति करते थे। बुद्धि देवी की सेवा से माता के सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, एवं सम्यक्चारित्र के अन्दर विशेष निर्मलता होने लगी थी एवं लक्ष्मी देवी की सेवा से माता को अनेक प्रकार के ऐश्वर्यों का लाभ हुआ था तथापि वह माता प्रजावती अपने तीव्र पुण्य के उदय से व्यवहार से ही सुन्दर थी तथा स्वभाव से निर्मल भी। मणि पर जिस प्रकार संस्कार कर देने से और भी अधिक चमक आ जाती है, उसी प्रकार श्री आदि देवियों के द्वारा शोभा आदि गुणों से संस्कार युक्त की गई वह माता और भी विशेष रूप से सुन्दर जान पड़ने लगी।।21-22।।

कदाचित् **चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा के दिन जब कि शुभ लग्न था, अश्विनी नाम का शुभ नक्षत्र** था एवं योग आदि भी शुभ थे, वह अहमिन्द्र भगवान श्री मल्लिनाथ का जीव **अपराजित नाम के विमान** से चय कर मति, श्रुति एवं अवधिरूप तीन ज्ञानों को धारे हुए मोक्षमार्ग को प्रगट करने के लिए अत्यन्त स्वच्छ स्फटिक पाषाण के समान माता प्रजावती के गर्भ में आकर अवतीर्ण हो गया।।23-24।। भगवान श्रीमल्लिनाथ के गर्भ में आते ही भवनवासी आदि चारों निकायों के देव के घरों में घण्टा आदि बजने लगे एवं सिंहासन आदि काँप गए। घण्टा आदि का बजना एवं सिंहासन का काँपना आदि शुभ लक्षणों से उन्हें भगवान श्रीमल्लिनाथ के गर्भ में आने का निश्चय हो गया। वे अपने-अपने निकायों के इन्द्र एवं अपनी-अपनी देवांगनाओं के साथ शीघ्र ही अपने-अपने वाहनों पर सवार हो गए एवं अपनी दैदीप्यमान प्रभा से समस्त आकाश को प्रकाशमान करते हुए वे मोक्ष प्राप्ति की अभिलाषा से शीघ्र ही मिथिलापुरी आकर उपस्थित हो गये।।25-26।। गर्भावतार नामक पहले कल्याण में आए हुए सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र ने समस्त देवों के साथ धर्म की प्राप्ति की अभिलाषा से गर्भ में आये हुए भगवान श्री जिनेन्द्र के गुणों का भक्तिभाव से स्मरण किया एवं गर्भवती माता प्रजावती के दोनों

चरण कमलों को मणिमयी मुकुटों से चमचमाते हुए अपने मस्तकों से हर्षपूर्वक नमस्कार किया।।27-28।। उसके बाद इन्द्र आदि देवो ने भगवान श्री मल्लिनाथ के माता-पिता दोनों की पूजा की; दिव्य भूषण आदि प्रदान कर सम्मान किया एवं इस प्रकार पवित्र कार्य को पूरा कर वे समस्त देव अपने-अपने स्थानों पर चले गए।।29।। उस दिन से छप्पन दिक्कुमारियाँ इन्द्र की आज्ञा से सदा माता के आस पास रहने लगीं एवं जिसे जो कार्य करने के लिए सौंपा जाता था, उसे आनन्दपूर्वक पूरा कर अपने को कल्याण की प्राप्ति हो, इस अभिलाषा से वे माता प्रजावती की बड़ी भक्ति से सेवा करने लगीं।।30।। उनमें बहुत सी कुमारियाँ माता के चित्त को प्रसन्न करने के लिए मांगलिक पदार्थ हाथ में लेकर खड़ी रहती थीं। बहुत सी माता को भाँति-भाँति के भूषण पहनाती थीं। कोई-कोई उन्हें वस्त्र पहनाती थीं एवं मालाएँ प्रदान करती थीं, बहुत सी माता का श्रृंगार करती थीं। कोई-कोई उबटन आदि लगाकर माता के लिए स्नान की तैयारियाँ करती थीं। बहुत सी कुमारियाँ उनके शरीर की रक्षा करती थीं। बहुत-सी कुमारियाँ 'माता को सुख मिले' ऐसे उपायों को रचना करती थीं। कोई-कोई देवांगना माता के रहने के महल को झाड़-बुहार कर साफ करती थीं, बहुत-सी कुमारियाँ माता की इच्छानुसार बड़ी स्वादिष्ट रसोई करती थीं। कोई-कोई देवागनाएँ माता के महल में मणिमयी दीपक जलाती थीं। कोई-कोई बालक के जन्मकाल में जो गीत गाए जाते हैं, उन गीतों को गाती थीं। कोई-कोई महामनोहर शब्द करने वाली वाद्य बजाती थी। कोई-कोई महामनोहर नृत्य करती थीं एवं कोई-कोई कुमारियाँ नाना प्रकार की क्रीड़ाएँ एवं मन को प्रसन्न करने वाली कथाएँ कहती थीं। इस प्रकार वे समस्त कुमारियाँ भाँति-भाँति की मनोहर क्रियाएँ कर माता का चित्त अत्यन्त प्रसन्न रखती थीं।।31-34।। भगवान श्री मल्लिनाथ के गर्भ में आते ही कुबेर को भी परमानन्द हुआ था। इसलिए नौ मास पर्यन्त बड़ी ऋद्धि के साथ वह प्रतिदिन बराबर उनके महल में सुवर्ण एवं भाँति-भाँति के रत्नों की वर्षा करता रहता था।।35।। आठ महीनों के बीत जाने पर जब नवें मास का आरम्भ हुआ, उस समय गर्भवती माता प्रजावती के समीप में बैठकर वे देवांगनाएँ गूढ़ार्थक अर्थात् जिनका अर्थ गूढ़ होता था, हर एक नही समझ सकता था, ऐसे श्लोकों से एवं नाना प्रकार के उत्तमोत्तम प्रश्नों से माता के मन को रिझाती थी।।36।। कोई-कोई कहती थी, ''अच्छा माता! इस पहेली का अर्थ बताओ-

ऐसा त्रिनेत्र-तीन नेत्रों का धारण करने वाला संसार के अंदर महादेव कौन है? जो 'नित्यकान्ताविरक्तः' अर्थात् सदा स्त्रियों से विरक्त हो अथवा नित्यकांता-मोक्षरूपी स्त्री में विशेष रूप से अनुरक्त हो। प्रारम्भ में काम सहित हो, परन्तु पीछे से सर्वथा काम का विजय करने वाला हो, बड़ा महान हो तथा प्रारम्भ में कुछ परिग्रह से आकांक्षा रखने वाला हो; परन्तु पीछे से जो सर्वथा उनकी आकांक्षा से विमुख हो गया हो। यदि कहा जाएगा कि संसार के अंदर जो महादेव प्रसिद्ध हैं, वही इन गुणों का धारक महादेव हो सकता है, सो ठीक नहीं, क्योंकि वह पार्वती नाम

की स्त्री को अपना आधा अंग बनाए हुए है; इसलिए स्त्री में अत्यन्त रत रहने के कारण वह सदा स्त्रियों से विरक्त नहीं माना जा सकता तथा अत्यन्त विषय लोलुपी होने के कारण वह मोक्षरूपी स्त्री में भी विशेष रूप से रत नहीं हो सकता; क्योंकि इस प्रकार की विषयवासना में लिप्त पुरुषों से मोक्ष स्त्री को अत्यन्त दूर रहती है तथा वह आदि में काम सहित हो, पीछे से काम का जीतने वाला हो, यह भी बात उसके अन्दर नहीं बन सकती। क्योंकि जो काम के अत्यन्त वशीभूत होकर पार्वती नाम की स्त्री को सदा पार्श्व में रखता है, वह कभी काम का जीतने वाला नहीं कहा जा सकता। इसलिए संसार में जो प्रसिद्ध महादेव को काम का बैरी माना जाता है, वह सर्वथा मिथ्या है तथा वह पहले परिग्रहों से आकांक्षा रखने वाला हो तथा पीछे से उनकी आकांक्षा से विमुख हो, यह भी बात नहीं; क्योंकि वह स्त्रीरूप परिग्रह को एक क्षण भी अपने से दूर नहीं कर सकता। प्रत्युत उनमें ऐसा लिप्त है कि स्त्री को ही अपना आधा अंग मानता है तथा उसी में अपनी शोभा समझता है।'' माता प्रजावती इस प्रश्न का उत्तर देती थी कि ऐसा महादेव तीर्थंकर भगवान ही हो सकते हैं, क्योंकि तीर्थंकर भगवान ही भावों की अपेक्षा से सदा स्त्रियों से विरक्त रहते हैं अथवा सदा विद्यमान रहने वाली मोक्ष स्त्री में वे ही अत्यन्त अनुरक्त रहते हैं। प्रारम्भ में कामदेव के जाल में फंस जाने पर भी अन्त में वे कामदेव को सर्वथा नष्ट करने वाले होते हैं। प्रारम्भ में परिग्रह में कुछ आकांक्षा रखने पर भी पीछे वे उससे सर्वथा रहित हो जाते हैं एवं जन्मते ही नियम से मति, श्रुति एवं अवधि इन तीनों ज्ञानरूपी नेत्रों के धारक होते हैं।।37।। कोई-कोई जिसमें क्रिया गुप्त है ऐसा श्लोक कर इस प्रकार माता की प्रशंसा करती थी–

''हे देवी! मंगलमयी माता! तुम्हारे गर्भ में भगवान श्री मल्लिनाथ ने जन्म धारण किया है, इसलिए उस विशिष्ट गर्भ के द्वारा 'आदिहर्यादीनां मनः अहारि' अर्थात् प्रथम स्वर्ग के इन्द्र को आदि लेकर समस्त देवों! का मान हरा गया है–वे भी तुम्हारे सेवक हो गये हैं, अतः तुम मनुष्य लोक के उत्तमोत्तम पदार्थों के भोग के साथ स्वर्गलोक के समस्त मांगलिक–उत्तमोत्तम पदार्थों का भी भोग करो। यहाँ पर ''आहारि'' यह क्रिया पद गुप्त है। कोई-केई देवांगना जिनके उच्चारण करने में ओंठ आपस में न लगें, ऐसे अक्षरों का श्लोक बनाकर इस प्रकार माता की प्रशंसा करने लगीं–'हे सखी! अनन्त गुणों का धारण करने वाला तीनों लोक का नाथ, सकल संसार का गुरु एवं नित्य स्त्री अर्थात् शिवरूपी स्त्री के गुणों में सदा अनुराग रखने वाला तेरा पुत्र चिरकाल तक जयवन्त हो।'' इस श्लोक में ओष्ठ स्थानीय अर्थात् जिसका उच्चारण ओठों की सहायता से हो ऐसा कोई भी वर्ण नहीं है।।38-39।। बहुत-सी देवांगनाएँ माता के समीप बैठकर अनेक प्रकार के उत्तमोत्तम प्रश्न करती थीं तथा माता प्रजावती बुद्धिपूर्वक उनका स्पष्ट उत्तर देती थीं उनमें कुछ प्रश्नोत्तर इस प्रकार के थे–

प्रश्न–माता! इस संसार में तुम्हारे समान परम सौभाग्यवती अन्य कौन स्त्री हो सकती है? उत्तर–जो स्त्री धर्म के स्वामी तीर्थंकरों को उत्पन्न करने वाली हो। प्रश्न–संसार के अंदर अज्ञान

को दूर करने वाला उत्तम गुरु कौन हो सकता है? उत्तर–जो गुरु वास्तविक रूप से तत्त्वों का जानकार हो, बाह्य आभ्यन्तर दोनों प्रकार के परिग्रहों से रहित हो एवं अपने को तथा संसार समुद्र में डूबते हुए प्राणियों के पापों का तारने वाला हो।

प्रश्न–संसार में कुगुरु (मिथ्या गुरु) कौन है? **उत्तर–**जो स्पर्शन, रसना आदि पाँचों इन्द्रियों के विषय में आसक्त हो, बाह्य-आभ्यन्तर दोनों प्रकार के परिग्रह में ममत्व रखने वाला हो एवं क्रोधी-मानी आदि होने से अत्यन्त प्रमादी हो। **प्रश्न**–संसार में समस्त पुरुषों में उत्तम पुरुष कौन है? **उत्तर–**जो मोह से रहित हो एवं मोक्ष के लिए सदा प्रयत्न करने वाले हों।।40-41।। **प्रश्न**–संसार के अन्दर सबसे नीच पुरुष कौन है? **उत्तर–**जो अनेक प्रकार से तपों को आचरण करने वाला तो हो, परन्तु इन्द्रियरूपी शत्रुओं के घातने में असमर्थ हो अर्थात् विषयों का लम्पटी होने के करण इन्द्रियों को वश में करने वाला न हो। **प्रश्न**–संसार में विद्वान पुरुष कौन हैं? **उत्तर–**जो हर एक पदार्थ का वास्तविक रूप से विचार करने वाला हो, यह पदार्थ त्यागने योग्य है एवं यह पदार्थ ग्रहण करने योग्य हैं इस प्रकार का अच्छी तरह जानकार हो तथा आगम का भी जानकार हो।।42।। **प्रश्न**–संसार के अंदर मूर्ख कौन है? **उत्तर–**जो अनेक प्रकार के शास्त्रों को जान कर भी अत्यन्त अहंकारी हो एवं सदा पापों का आचरण करने वाला हो। **प्रश्न**–संसार में मनुष्यों को क्या कार्य शीघ्र करना चाहिए? **उत्तर–**स्वर्ग एवं मोक्ष का साधन।।43।। **प्रश्न**–इस संसार में पथ्य हितकारी पदार्थ क्या है? **उत्तर–**तप, दान, व्रतों का पालन एवं सम्यग्दर्शन आदि का धारण। **प्रश्न**–संसार में सबसे बलवान पदार्थ क्या है? **उत्तर–**उत्तम तप एवं दान आदि के द्वारा प्राप्त किया हुआ उत्कृष्ट धर्म। **प्रश्न**–संसार में कैसा वचन बोलना अच्छा माना जाता है? **उत्तर–**हितकारी सत्य परिमित एवं शुभ। **प्रश्न**–संसार में जागने वाला कौन है? **उत्तर–**जो महापुरुष सदा अपनी आत्मा के स्वरूप का चिन्तवन करने वाला हो एवं मोह तथा निद्रा से रहित हो। **प्रश्न**–संसार में उत्तम कार्य क्या माना जाता है? **उत्तर–**जो पुरुष अत्यन्त दुर्बल है, तप एवं दान के करने में असमर्थ है, उनके द्वारा किया गया तप एवं दान। **प्रश्न**–संसार में सामान्य रूप से जीवों के बैरी कौन हैं? **उत्तर–**क्रोध, मान, माया, लोभ–ये चार कषाय, निन्दित ध्यान तथा इन्द्रियों के विषय।।44-46।। **प्रश्न**–संसार में वह पुरुष कौन है, जो मित्र हो? **उत्तर–**जो धर्म का पालन करने वाला, चरित्र का आचरण करने वाला तथा पूजा आदि उत्तम कार्यों में सहाय करने वाला हो। **प्रश्न**–शत्रु पुरुष कौन है? **उत्तर–**जो धर्म करने वाले को न तप का उपदेश देता है तथा न दान आदि देता है।।47।। **प्रश्न**–संसार में अमृत के समान पीने योग्य पदार्थ क्या है? **उत्तर–**भगवान श्रीजिनेन्द्र का वचनरूपी अमृत। **प्रश्न**–संसार में सुखी पुरुष कौन है? **उत्तर–**जो सन्तोष रखने वाला है। **प्रश्न**–संसार में दु:खी पुरुष कौन है? **उत्तर–**जो स्पर्शन आदि पाँचों इन्द्रियों के विषय में लम्पट है।।48।। **प्रश्न**–संसार में अत्यन्त धनवान पुरुष कौन माना जाता है? **उत्तर–**धन तो जिसके पास कम हो; परन्तु दान आदि उत्तम कार्यों को अधिकता से करने वाला

हो। **प्रश्न**–संसार में निर्धन पुरुष कौन है? **उत्तर–**जो अत्यन्त धनवान होने पर भी धन की आशा से परदेशों में घूमता-फिरता हो एवं दान आदि उत्तम कार्यों में धन खर्च करने वाला न हो।।49।। **प्रश्न**–संसार में सबसे उत्कृष्ट पुरुष कौन है? **उत्तर–**जिसके गर्भ-जन्म आदि पाँच कल्याणक हों। **प्रश्न**–इस संसार में ऐसा पुरुष कौन है, जिसके सेवक बड़े-बड़े देवेन्द्र भी होते हैं? **उत्तर–**मेरे पुत्र के अर्थात् तीर्थंकर भगवान के देवेन्द्र आदि सेवक रहते हैं। वे अन्य किसी के सेवक नहीं हो सकते।।50।। **प्रश्न**–संसार में उत्तम कार्य क्या माना जाता है? **उत्तर–**जिसके करने से सर्वत्र यश विस्तरे, धर्म का लाभ हो तथा समस्त प्रकार के सुखों की प्राप्ति हो। **प्रश्न**–संसार में अकार्य–निन्दित कार्य क्या है? **उत्तर–**जिससे पाप की उत्पत्ति हो। सर्वत्र निन्दा फैले एवं अनेक प्रकार के दु:खों की प्राप्ति हो।।51।। भगवान श्री मल्लिनाथ की माता प्रजावती के प्रति देवियों के ऊपर कहे गए प्रश्नों आदि को लेकर और भी शुभ अत्यन्त कठिन-कठिन प्रश्न किए थे, जिनका कि उत्तर देना साधारण कार्य नहीं था तथापि उस माता के गर्भ में तीन ज्ञानरूपी नेत्रों के धारक स्वयं तीर्थंकर विराजमान थे, इसलिए देवियों के प्रश्नों का उत्तर उनके प्रभाव से माता ने बड़ी युक्ति एवं गम्भीरता के साथ स्पष्ट रूप से दिया था। गर्भ में विराजमान तीर्थंकर भगवान के माहात्म्य से ऐसा कोई भी देवियों का प्रश्न नहीं बचा था, जिसका उत्तर माता से नहीं बन पड़ा हो।।52-53।। यद्यपि वे तीन लोक के नाथ भगवान श्री मल्लिनाथ गर्भ के अन्दर विराजमान थे, गर्भ से बाहर उनका कोई भी शरीर का अवयव प्रकट नहीं था तथापि जिस प्रकार रत्नों की प्रभा से दैदीप्यमान खानों की धारक पृथ्वी अत्यन्त शोभायमान जान पड़ती है, उसी प्रकार उस माता के शरीर में भी अलौकिक शोभा की छटा प्रगटने लगी थी।।54।। यद्यपि तीर्थंकर भगवान श्री मल्लिनाथ अपनी माता प्रजावती के उदर में विराजमान थे तथापि जिस प्रकार सीप के मध्य भाग में मोती रहता है–पर वह रंचमात्र भी सीप को क्लेश का देने वाला नहीं होता, उसी प्रकार माता प्रजावती को भी उनके गर्भ में रहने पर किसी प्रकार का क्लेश नहीं था, अर्थात् गर्भ के भार से जैसा अन्य स्त्रियों को क्लेश उठाना पड़ता है, वैसा भगवान श्रीमल्लिनाथ को गर्भ में धारण करने से माता प्रजावती को रंचमात्र भी क्लेश नहीं था।।55। गर्भ से पहले माता प्रजावती का उदर त्रिवली से शोभायमान था। भगवान श्रीमल्लिनाथ के गर्भ में आने पर त्रिवली नष्ट होकर उदर को बढ़ना चाहिए था, परन्तु उन श्री जिनेन्द्र के अनुपम प्रभाव से वह त्रिवली जैसी थी, वैसी की वैसी ही विद्यमान रही, रंचमात्र भी उदर के अंदर किसी प्रकार का विकार नहीं हुआ। परन्तु ऐसा होने पर भी गर्भ के अंदर बालक भगवान का शरीर निरन्तर बढ़ ही रहा था अर्थात् उदर के नहीं बढ़ने से गर्भ नहीं बढ़ता था, यह बात नहीं थी।।56।।

जब ठीक नवमा मास पूर्ण हो गया, उस समय अगहन मास की **शुक्ल पक्ष की एकादशी** के दिन जबकि **अश्विनी** नाम का शुभ **नक्षत्र** था, लग्न भी अत्यन्त सुन्दर था, योग भी शुभ था, माता प्रजावती ने मति, श्रुति, अवधिरूप तीन ज्ञान के धारक एवं तीन लोक के स्वामी

पुत्र–भगवान श्रीमल्लिनाथ को जन्म दिया।।57-58।। परम पावन भगवान श्री मल्लिनाथ के जन्म के महात्म्य से आकाश से देवों के द्वारा कल्पवृक्ष के पुष्पों की विपुल वर्षा होने लगी। मन्द-मन्द शीतल सुगन्धित पवन बहने लगी, बिना बजाये एवं गम्भीर शब्द करने वाले देवों के वाद्य बजने लगे। अकस्मात् ही देवों के आसन कम्पायमान हो गये। उनके मुकुट नम्रीभूत हो गए एवं घण्टों का गम्भीर शब्द होने लगा। इसलिए इन शुभ चिह्नों से देवों को स्पष्टरूप से मालूम पड़ गया कि भगवान श्रीमल्लिनाथ का जन्म हो गया है।।59-61।। उस समय भगवान श्री मल्लिनाथ के जन्मकाल में ज्योतिषी देवों के घरों में अपने आप सिंहनाद नाम का वाद्य का तुमुल शब्द के साथ बजा। भवनवासी देवों के भवनों में अत्यन्त गम्भीर शंख का शब्द होने लगा था। व्यन्तर देवों के घरों में भेरी नगाड़े का शब्द होने लगा था। वैमानिक देवों के आसन कम्पायमान हो गए। इनके अतिरिक्त श्रीमल्लिनाथ के जन्मकाल में और भी अनेक प्रकार के आश्चर्य होने लगे थे, जिससे हर एक निकाय के इन्द्रों ने उनके जन्म-कल्याणक में सम्मिलित हुए थे।।62-63।। उसके बाद सैकड़ों प्रकार के महोत्सवों के करने में लालायित सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र को साथ लेकर चारों निकायों के समस्त इन्द्रों ने अपनी-अपनी आवश्यक वस्तुएँ अपने-अपने साथ ले लीं। अपने-अपने वाहनों पर वे सवार हो गए। ''हे स्तुति करने योग्य भगवान्! आप सदा जयवंत रहें एवं सुदीर्घकाल जीवें। हे पूज्य! आप फलें-फूलें, वृद्धि को प्राप्त हों''–इस प्रकार उस समय बड़े जोर से कोलाहल होने लगा। अपने-अपने शरीरों के उत्तमोत्तम भूषणों की किरणों से उन्होंने समस्त दिशाएँ एवं आकाश जगमगा दिया। सैकड़ों प्रकार के वाद्यों के शब्दों से एवं मनोहर गीत, नृत्य एवं उत्साह परिपूर्ण कार्यों से समस्त दिशाएँ तथा आकाश पूर दिया। इस प्रकार अपने-अपने आज्ञाकारी देव एवं अपनी-अपनी देवांगनाओं के साथ वे भगवान श्रीमल्लिनाथ का जन्म-कल्याणक मनाने के लिए विशाल विभूति एवं हर्ष के साथ मिथिलापुरी आकर उपस्थित हो गए।।64-47।। जिस समय सौधर्म आदि इन्द्र एवं देवगण मिथिलापुरी में आ गए, उस समय राजा कुम्भ के महल का आँगन, समस्त मिथिलापुरी मार्ग, वन आदि में जहाँ देखों वहाँ देवांगनाए, देव एवं वाहन आदि की सेना ही सर्वत्र नजर आती थीं। इसलिए उस समय मिथिलापुरी में स्वर्गलोक का दृश्य दीख पड़ता था–मिथिलापुरी ही लोगों की दृष्टि में स्वर्गभूमि जान पड़ती थी।।68।। जिस महल के अन्दर भगवान श्रीमल्लिनाथ का जन्म हुआ था, वह महल स्वयं अपनी प्रभा से जगमगा रहा था। राजमहल के आँगन में देवों के पहुँचते ही सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र की इन्द्राणी ने शीघ्र ही उस मनोहर महल के अन्दर प्रवेश किया एवं वहाँ पर कुमार भगवान श्री मल्लिनाथ के साथ अत्यन्त कोमल शैय्या पर शयन करती हुई माता प्रजावती को बड़े हर्ष के साथ निरखा।।69।। आनन्द से पुलकित हो इन्द्राणी ने तीन लोक के गुरु भगवान श्री जिनेन्द्र की बारम्बार प्रदक्षिणा दी। तत्पश्चात् अत्यन्त भक्ति से नमस्कार किया। वह भगवान श्रीजिनेन्द्र की माता के सामने विनयपूर्वक बैठ गई एवं मनोहर शब्दों में इस प्रकार उनकी स्तुति करने लगी–

हे माता! तीनों लोकों के गुरु भगवान श्री मल्लिनाथ को तुमने जन्म दिया है; इसलिए तुम समस्त लोक की माता हो। तुम्हीं ने देवों के देव महादेव पुत्र को उत्पन्न किया है, इसलिए हे माता! तुम्हीं संसार के अंदर महादेवी हो।।70-71।। माता! तुम्हारे समान तीनों लोक के अन्दर अन्य कोई भाग्यवती स्त्री नहीं; इसलिए तुम्हीं तीनों लोक की स्त्रियों की शिरोमणि हो। तुम्हीं समस्त जगत् में उत्कृष्ट हो। तुम्हीं तीनों लोक की स्वामिनी हो एवं तुम्हीं कल्याणरूपिणी एवं मंगलमयी हो।।72।। इस प्रकार महामनोहर शब्दों से स्तुति कर इन्द्राणी ने अपनी माया से माता प्रजावती को सुख निद्रा में निद्रित कर दिया। ठीक भगवान के ही आकार प्रकार के एक मायामयी पुत्र का निर्माण कर उसे माता की गोद में सुला दिया। तीन लोक के गुरु भगवान श्री जिनेन्द्र को माता की शैय्या से अपने हाथों से उठा कर बड़े आश्चर्य से उनके महानोहर रूप एवं सौंदर्य को देखकर मारे आनन्द के वह गद्‌गद् हो गई।।73-74।। जहाँ पर सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र खड़ा हुआ था, भगवान श्री जिनेन्द्र को लेकर इन्द्राणी उसी ओर चली। समस्त जगत् के मंगल के कर्ता भगवान श्री मल्लिनाथ के आगे-आगे जिनके हाथों में छत्र, चमर आदि लगे हुए हैं; ऐसे मांगलिक द्रव्यों को धारण करने वाली दिक्कुमारियाँ चलने लगीं।।75।। पास में आकर इन्द्राणी ने सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र के शुभ हाथों में भगवान श्री जिनेन्द्र को सौंप दिया। वह भी भगवान श्री जिनेन्द्र का अद्वितीय रूप देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ एवं आनन्द से गद्‌गद् होकर इस प्रकार भक्तिपूर्वक स्तुति करने लगा-

हे भगवन्! हे बालचन्द्र! हम लोगों को परमानन्द प्रदान करने के लिए संसार में आप का उदय हुआ है, क्योंकि चन्द्रमा के उदय से लोगों को हर्ष होता है, यह प्रत्यक्ष सिद्ध है तथा जिस प्रकार चन्द्रमा अन्धकार का नाश करने वाला होता है, उसी प्रकार मोहरूपी गाढ़ अन्धकार के आप भी नियम से नाश करने वाले होंगे।।76।। जिस प्रकार सूर्य के उदय होने का स्थान उदयाचल है, उसी प्रकार हे नाथ! केवलज्ञान रूपी सूर्य के उदय होने के लिए आप उदयाचल हो तथा हे भगवन्! विद्वान लोग आप को ही मिथ्याज्ञान एवं निद्रारूपी अन्धकार के नाश करने वाले मानते हैं।।77-78।। हे भगवन्! संसार के समस्त प्राणी मोहरूपी अन्धकार से परिपूर्ण कूप में पड़े हुए हैं, उनको धर्मरूपी हाथ का अवलम्बन देकर आप ही उद्धार करेंगे, दूसरे किसी व्यक्ति में सामर्थ्य नहीं, जो उद्धार कर सके। इसलिए संसार मे बिना प्रयोजन के यदि बन्धु हैं तो आप ही हैं, अन्य कोई आप के समान निष्प्रयोजन बन्धु नहीं हो सकता।।79।।

इसलिए हे नाथ! आप समस्त लोक को आनन्द प्रदान करने वाले हैं, अतः आप के लिए नमस्कार है। आप संसार में सबको प्रसन्न करने वाले बालचन्द्रमा हैं; इसलिए आप के लिए नमस्कार है। आप आश्चर्यकारी मूर्ति के धारक हो; इसलिए आप के लिए नमस्कार है। हे प्रभो! मोक्षरूपी स्त्री के चित्त को हरण करने वाले आप ही हो एवं आप ही सुख स्वरूप हो; इसलिए आप के लिए नमस्कार है। हे देव! आप ही समस्त लोक के स्वामी हो एवं आप ही समस्त प्रकार

के कल्याणकों को प्राप्त करने वाले हो; इसलिए आप के लिए भक्तिपूर्वक नमस्कार है।।80-81।। इस प्रकार भक्तिपूर्वक मनोहर शब्दों से स्तुति कर इन्द्र ने भगवान श्री मल्लिनाथ को ऐरावत हाथी पर बैठे ही बैठे अपनी गोद में ले लिया एवं उनका अभिषेक करने के लिए अनेक देवों से वेष्टित वह मेरू पर्वत की ओर चल दिया।।82।। भगवान श्रीमल्लिनाथ को इंद्र की गोद में विराजमान देखकर समस्त देव मारे आनन्द के पुलकित हो गए एवं मन के अन्दर अत्यन्त प्रमोद धारण कर वे ''हे स्वामी! आप चिरकाल तक जीवो, नादो, विरदो'' इस प्रकार गम्भीर शब्दों में प्रचण्ड कोलाहल करने लगे।।83।। तीन जगत् के गुरु भगवान श्री मल्लिनाथ को सौधर्म इन्द्र की गोदी में विराजमान देखकर ऐशान स्वर्ग के इन्द्र को बड़ा भारी सन्तोष हुआ। आनन्द से गद्गद होकर बड़े आदर से उसने भगवान पर छत्र लगा दिया।।84।। सनत्कुमार एवं माहेन्द्र स्वर्गों के इन्द्र भी धर्म के चक्रवर्ती भगवान श्रीमल्लिनाथ पर चमर ढोरने लगे, जो चमर क्षीर समुद्र की तरंगों के समान महामनोहर एवं श्वेत थे।।85।। भगवान के पाँचों कल्याणकों में समस्त देव सम्यग्दृष्टि ही आवें यह नियम नहीं, बहुत से मिथ्यादृष्टि देव भी आते हैं; क्योंकि वे इन्द्र के आज्ञाकारी होते हैं; इसलिए इन्द्र की आज्ञानुसार अवश्य उन्हें वहाँ पर आना पड़ता है। भगवान श्री मल्लिनाथ के जन्मकाल में जो भी मिथ्यादृष्टि देव आए थे, वे भी यह निश्चय कर कि ''जब स्वयं सौधर्म स्वर्ग का स्वामी भगवान श्री मल्लिनाथ की सेवा में भक्तिपूर्वक लगा हुआ है, तब यही ठीक जान पड़ता है कि समस्त मतों में जैन मत ही पवित्र एवं कल्याण प्रदान करने वाला है, अन्य मत नहीं'' उनका जैन धर्म पर गाढ़ श्रद्धान हो गया।।86।। उस समय मेरु पर्वत पर जाने का अवसर था, इसलिए समस्त अपने-अपने इन्द्रों के संग अपने-अपने वाहनों पर सवार थे; भगवान श्री जिनेन्द्र के नाना प्रकार के महोत्सवों के करने में वे व्यग्र थे। वीणा, मृदंग, बांसुरी आदि सहस्त्रों प्रकार के वाद्य बजते थे। भगवान श्री जिनेन्द्र के उत्सव का गान गन्धर्व जाति के देव एवं किन्नर जाति की देवांगनाएँ महामनोहर ललित शब्दों से करती हुई चल रही थीं। उस समय अप्सराएँ नेत्रों को परमानन्द प्रदान करने वाला महामनोहर नृत्य करती चली जाती थीं। ध्वजा एवं छत्र आदि उपकरणों की भरमार से उस समय सारा आकाश ढंका सरीखा जान पड़ता था। इस प्रकार उत्कृष्ट एवं विपुल विभूति से उस समय सारा आकाश व्याप्त था।।87-89।। जो अपने पीछे एवं आगे चलने वाले असंख्यात देवों से व्याप्त था एवं परम धर्मात्मा था, ऐसा सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र इस समय मेरू पर्वत पर आया, भक्तिभाव से उसकी तीन प्रदक्षिणाएँ दीं एवं अत्यंत हर्ष के साथ तीन लोक के स्वामी भगवान श्री मल्लिनाथ को मेरू पर्वत पर ले आया।।90।। मेरु पर्वत के मस्तक पर ईशान कोण में एक पांडुक नाम की शिला है एवं उसके मध्य भाग में सिंहासन विद्यमान है। इन्द्राणी एवं अनेक इन्द्र आदि से वेष्टित सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र उस स्थान पर आया एवं तीर्थंकर भगवान श्री मल्लिनाथ का जन्माभिषेक करने की उत्कृष्ट अभिलाषा से उन्हें वहाँ पर विराजमान कर दिया।।91।।

जिस पांडुक शिला पर ले जाकर इन्द्र ने भगवान श्री मल्लिनाथ को विराजमान किया था, उस शिला की प्रशंसा करते हुए ग्रंथकार कहते हैं कि वह पांडुक शिला अत्यन्त शुद्ध स्फटिकमयी पाषाण की है एवं उस स्फटिक मणि से निकलने वाली रत्नों की किरणों से व्याप्त है। उस शिला पर अनन्त तीर्थंकरों का अभिषेक किया जा चुका है; इसलिए क्षीर समुद्र के विपुल जल से वह अनेक बार प्रक्षालित की जा चुकी है; अर्थात् जब-जब तीर्थंकरों का अभिषेक हुआ है, तब-तब क्षीर समुद्र के विपुल जल से ही हुआ है; इसलिए उस पांडुक शिला पर जिन-जिन महापुरुष तीर्थंकरों का अभिषेक हुआ है, उनके अभिषेकों के साथ उस शिला का भी अनेक बार अभिषेक हो चुका है; अतएव पवित्रता से वह सिद्ध शिला के समान महापवित्र एवं उत्तम है। वह निर्मल शिला सौ योजन लम्बी है, आठ योजन प्रमाण ऊँची है एवं पचास योजन प्रमाण उसकी चौड़ाई है सदा उसके ऊपर छत्र, चन्दोवे आदि मांगलिक द्रव्य तैयार रहते हैं; इसलिए उनकी प्रभा से सदा जगमगाती हुई वह अत्यन्त शोभायमान जान पड़ती है।।92।। उस महामनोहर शिला के मध्यभाग में एक महामनोज्ञ सिंहासन है, जो अगणित उत्तमोत्तम रत्नों से व्याप्त है एवं सुवर्णमय है। भगवान श्री जिनेन्द्र को उस पर ले जाकर विराजमान कर दिया गया। उस समय भगवान के दिव्य शरीर की प्रभा से समस्त दिशाएँ शोभायमान थीं एवं इन्द्र आदि देवों से चारों ओर से वेष्टित वे भगवान श्रीमल्लिनाथ उस समय महामनोहर जान पड़ते थे; इसलिए ऐसे तीनों लोक के जीवों को तारने वाले भगवान को मैं उनकी गुण सम्पदा की प्राप्ति की अभिलाषा से भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ एवं उनके गुणानुवाद करता हूँ।।93।।

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति कृत संस्कृत भाषा में श्री मल्लिनाथ चरित्र की पं. गजाधरलालजी न्यायतीर्थ विरचित हिन्दी वचनिका में उनके गर्भ और जन्म इन दो कल्याणकों का वर्णन करने वाला चौथा परिच्छेद समाप्त हुआ।।4।।

जन्म कल्याणक

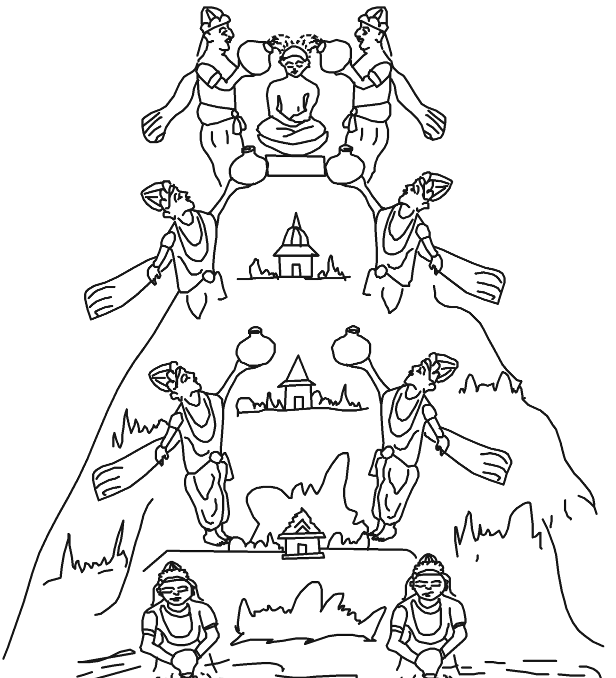

पंचम परिच्छेद

वंदे जगत्त्रयानंदंकर्तारं ज्ञानभास्करं।

जिनचंद्र महामोह तमोहंतारमद्भुतं॥

जो भगवान तीनों लोकों के जीवों को आनन्द प्रदान करने वाले हैं तथा जो सम्यग्ज्ञानरूपी सूर्यस्वरूप भी है एवं महामनोहररूपी अन्धकार को नष्ट करने वाले चन्द्रमा स्वरूप भी है; अर्थात् जो चन्द्रमा है, वह सूर्य नहीं हो सकता एवं जो सूर्य है, वह चन्द्रमा नहीं हो सकता क्योंकि दोनों का स्वरूप परस्पर विरोधी एवं भिन्न है; इसलिए एक ही भगवान श्री जिनेन्द्र सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों स्वरूप में नहीं हो सकते, परन्तु ऐसा होने पर भी सूर्य के समान अपने ज्ञान से पदार्थों को प्रकाशित करने वाले होने के कारण जो सूर्य स्वरूप भी हैं एवं चन्द्रमा जिस प्रकार अन्धकार का नाशक है, उसी प्रकार जो महामोहरूपी अन्धकार को नाश करने वाले हैं, इसलिए चन्द्रमा स्वरूप भी है; ऐसी अद्भुत गति के धारक भगवान श्री जिनेन्द्र को मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ। जिस पांडुक शिला का वर्णन ऊपर किया जा चुका है, भगवान श्रीजिनेन्द्र के अभिषेक का उत्सव देखने के लिए देवगण चारों ओर से उसे घेर कर बैठ गए तथा दिशाओं की रक्षा करने वाले दिक्पाल देव भी उत्सव का ठाट-बाट देखने के लिए यथायोग्य अपनी-अपनी दिशाओं में सन्नद्ध हो गए। पांडुक शिला पर देवों ने भगवान श्रीजिनेन्द्र के अभिषेक के समय एक विशाल मण्डप का निर्माण किया था। देवियों ने महामनोहर गीत, उत्तमोत्तम वाद्य के शब्द एवं नृत्यों के साथ भगवान श्री जिनेन्द्र के अभिषेक का महान् उत्सव करना प्रारम्भ कर दिया॥3॥ भगवान के अभिषेक के समय देवगण सुवर्णमयी कुम्भों में क्षीरोदधि समुद्र का अत्यन्त स्वच्छ एवं पवित्र जल लाते हैं, उससे भगवान का अभिषेक किया जाता है। जिन सुवर्णमयी कलशों में भगवान के अभिषेक का जल लाया गया था, उन कलशों का मुख एक-एक योजन चौड़ा था, आठ योजन प्रमाण वे गहरे थे, मोतियों की माला आदि से भूषित थे एवं अनेक अर्थात् संख्या में एक हजार आठ थे। क्षीर समुद्र से जल लाते समय देवों के चित्त आनन्द से गद्गद थे; इसलिए वे फैलकर उस समय लड़ीबद्ध खड़े थे॥4-5॥ भगवान श्री मल्लिनाथ के अभिषेक के समय सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र के हर्ष का पारावार नहीं था। अभिषेक के समय उसे दो भुजाओं से भगवान श्री जिनेन्द्र का अभिषेक करना पसन्द नहीं आया; इसलिए अनेक दिव्य आभूषणों से मण्डित शीघ्र ही उसने हजार भुजाएँ बना लीं॥6॥ सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र ने ''हे भगवान जयवन्त रहो'' ऐसा भक्तिपूर्वक उच्चारण कर जिनमें सुवर्णमयी कलश विद्यमान हैं, ऐसे अपने मनोहर हाथों से सबसे पहले जलधारा भगवान के मस्तक पर छोड़ी। उस प्रथम जलधारा के देते ही वहाँ पर विद्यमान असंख्यात सुर एवं असुरों को परमानन्द हुआ; इसलिए उनका तुमुल कोलाहल होने लगा एवं उसके बाद समस्त इन्द्रों ने मिलकर भगवान

श्री जिनेन्द्र के मस्तक पर अगणित जल धाराएँ छोड़ी।।7-8।। जिस समय इन्द्रगण उनके मस्तक पर जलधारा छोड़ते थे, उस समय वे धाराएँ महान नदियों के समान उनके मस्तक पर गिरती थीं; परन्तु जिस प्रकार विशाल पर्वत पर पड़ने वाली नदियों की धाराओं से वह रंचमात्र भी हिलता-डुलता नहीं, उसी प्रकार अचिंत्य शक्ति के धारक भगवान श्रीमल्लिनाथ भी अपने अनुपम प्रभाव से उन्हें क्रीड़ापूर्वक झेलते थे, घबड़ा कर जरा भी वे हिलते-डुलते नहीं थो।।9।। उस समय रंग-बिरंगी रत्नों की भूमियों पर पड़ने के कारण रंग-बिरंगी जल की बूँदों से व्याप्त आकाश इन्द्र धनुष की शोभा से व्याप्त जान पड़ता था। पांडुक वन में सर्वत्र क्षीर समुद्र का जल ही जल डोलता नजर आता था; इसलिए पांडुक वन उस समय साक्षात् क्षीर समुद्र सरीखा जान पड़ता था।।10।। इस प्रकार जिनमें अनेक प्रकार के गीत एवं नृत्य आदि कार्य हो रहे हैं, अनेक प्रकार के करोड़ों वाद्य बज रहे हैं एवं जिनका आयोजन अनेक देवी-देवों के द्वारा किए गए हैं, ऐसे सैकड़ों महान् उत्सवों के साथ क्षीर समुद्र के जल से जब भगवान का अभिषेक समाप्त हो चुका; तो उसके बाद धारा गिरते समय जिनसे 'जय जय' शब्द निकलता है, ऐसे सुगन्धित जल से भरे कलशों से देवेन्द्र ने भक्तिपूर्वक बड़े ठाट-बाट से भगवान श्री जिनेन्द्र के अभिषेक का आयोजन किया। नाना प्रकार की महामनोहर सुगन्धित द्रव्यों से मिश्रित सुगन्धित जल के भरे हुए कलश रखे गए एवं उनसे समस्त प्रकार के विधानों के जानकार इन्द्र ने तीन जगत् के जीवों को मोक्ष-मार्ग का विधान सुझाने वाली तीर्थंकर का भक्तिपूर्वक अभिषेक किया।।11-12।। तीर्थंकर का शरीर स्वभाव से ही अत्यन्त सुगन्धित था, इसलिए उनके शरीर पर वह गिरती हुई सुगन्धित जल की धारा अमृत की धारा के समान महाशोभायमान जान पड़ती थी।।14।। इस प्रकार सैकड़ों उत्सवों के साथ सबों को आश्चर्य उत्पन्न करने वाला वह सुगन्धित जल से किया गया अभिषेक भी समाप्त हो गया एवं भक्तिपूर्वक अभिषेक कर उन देवों ने महान पुण्य का संचय कर अपने को पवित्र बनाया।।15।। गंधोदक के सुगन्धित जल से उस समस समस्त दिशाएँ व्याप्त थीं तथा वह गंधोदक की धारा महापवित्र सज्जनों के पुण्यों की धारा सरीखी जान पड़ती थी। ''वह पवित्र धारा हमें भी पवित्र करे'' ऐसा उच्चारण कर देवों ने अपनी-अपनी विशुद्धि की कामना से स्वर्ग की पैडियों स्वरूप वह गंधोदक का पवित्र जल अपने-अपने मस्तकों से लगाया, पीछे समस्त शरीर में लगा डाला।।16-17।। सुगंधित जल से जिस समय भगवान का अभिषेक समाप्त हो गया, उस समय अनेक प्रकार के महोत्सवों के साथ देवों ने अगर-तगर आदि के उत्तमोत्तम सुगंधित चूर्णों से एवं सुगंधित जलों से तीर्थंकर के शरीर का उबटन किया।।18।। जब अभिषेक का कार्य एवं उबटन का समस्त कार्य समाप्त हो चुका, उस समय दिव्य एवं सुगंधित उत्तम पूजन की सामग्री से तीर्थंकर को चारों ओर से वेष्टित कर देवों ने बड़ी भक्ति से उनकी पूजा की।।19।। इस प्रकार देवों ने पूजा शांतिविधान एवं पुष्टिविधान का कार्य समाप्त कर तीनों लोक के गुरु भगवान श्री मल्लिनाथ की तीन प्रदक्षिणा दी एवं मस्तक झुकाकर उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया तथा

अभिषेक आदि कार्यों के समाप्त हो जाने पर उनकी परम धीरता-वीरता देखकर आश्चर्य से उत्सुक होकर इन्द्राणी नेश्रृंगार के लिए आयोजन करना प्रारम्भ कर दिया।।20-21।। जल से प्रक्षालित शरीर के धारक एवं स्वभाव से ही सुन्दर भगवान के शरीर पर जो जल की बूँदें विद्यमान थीं, इन्द्राणी ने सूक्ष्म एवं निर्मल वस्त्रों से उन्हें पोंछ कर साफ कर दिया।।22।। जिसकी उपमा किसी भी शरीर से नहीं दी जा सकती, ऐसा भगवान का शरीर यद्यपि स्वभाव से ही महा सुगंधित था, इसलिए अन्य सुगंधित द्रव्यों से उसका लेप करना निरर्थक था; तथापि अपनी भक्ति प्रकट करने के लिए इन्द्राणी ने अत्यन्त सुगंधित द्रव्यों का उनके अंग पर लेप किया था।।23।। तीन जगत् के स्वामी तीर्थंकर का ललाट समस्त अंगों में तिलकस्वरूप था अथवा संसार में जितने भी ललाटधारी पुरुष हैं, उन सबों के ललाटों में तिलकभूत था; इसलिए उस ललाट पर इन्द्राणी ने तिलक लगाया तथा मस्तक पर **मन्दार** जाति के कल्पवृक्ष की माला से शोभायमान **मुकुट** पहनाया।।24।। नेत्रों में जो अंजन लगाया जाता है, वह नेत्रों की दीप्ति बढ़ाने के लिए लगाया जाता है। भगवान श्री मल्लिनाथ समस्त लोक के ज्ञाता थे एवं ज्ञानरूपी नेत्र के स्वामी थे; इसलिए उनके नेत्रों में अंजन लगाने की कोई आवश्यकता नहीं थी, तथापि उनके उत्तम नेत्रों में जो इन्द्राणी ने अंजन लगाया था, वह केवल शिष्टाचार द्योतन करने के लिए ही था; अर्थात् उसने अपना कर्तव्य कर्म पूरा किया था।।25।। बेधे न जाने पर भी स्वभाव से ही उत्तम छिद्रों से शोभित भगवान श्री मल्लिनाथ के दोनों कानों को इन्द्राणी ने मनोहर कुण्डलों से भूषित किया एवं मणिमय महामनोहर हार पहनाकर उनका कण्ठ शोभायमान किया था।।26।। उनकी दोनों भुजाओं में महामनोज्ञ अनन्त मुद्रिका एवं कड़े पहनाये थे। कटिभाग पर महामनोहर मणिमयी करधनी बाँधी थी, दोनों पैरों में मणिमयी घुँघरू पहनाये थे, जो कि अनुपम थे एवं 'घुनुनु-घुनुनु' शब्द करने वाले थे, सो ऐसे जान पड़ते थे मानो साक्षात् सरस्वती देवी उन दोनों घुँघुरुओं की सेवा कर रही हैं।।27-28।। उत्तमोत्तम वस्त्र, भूषण एवं माला आदि से सजाए गए एवं अपने शरीर की मनोहर कांति से दैदीप्यमान वे भगवान श्री मल्लिनाथ ऐसे जान पड़ते थे मानो साक्षात् परम ब्रह्मस्वरूप हैं अथवा उदय को प्राप्त साक्षात् ज्ञान की मूर्ति हैं वा अत्यन्त सुन्दर होने के कारण साक्षात रत्नाकर-समुद्र स्वरूप हैं व साक्षात् धर्म की मूर्ति हैं अथवा लक्ष्मी के पुंज स्वरूप हैं व तेजों के अद्भुत खजाने हैं अथवा यशों की राशि हैं व संसार के अन्दर जितने भी पुण्य परमाणु हैं, उनके सर्वोत्कृष्ट स्थान हैं अथवा संसार में जितने गुण माने जाते हैं एवं कहे जाते हैं, उन सबके आधार ये ही हैं। इस रूप से भगवान श्री मल्लिनाथ की उस समय की शोभा अपरिमित थी।।29-31।। भगवान श्री मल्लिनाथ की उस समय की अलौकिक शोभा देखकर सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र को तृप्ति नहीं हो सकी; इसलिए उनके महामनोज्ञ रूप को देखने की उत्कट लालसा से उसी समय उसने हजार नेत्र बना लिए एवं हजार नेत्रों से उनका स्वरूप निरखने लगा।।32।। भगवान वे उस समय के अनुपम रूप को सुर-असुर एवं उनकी देवियाँ अपने पलक-रहित दिव्य नेत्रों से टकटकी

लगाकर देखने लगे एवं उनके उस प्रकार के अलौकिक रूप को देखकर अत्यन्त आश्चर्य करने लगे।।33।। तथा तीर्थंकर भगवान श्रीमल्लिनाथ का महात्म्य प्रगट कर उनके गुणों की प्राप्ति की अभिलाषा से इन्द्रगण अत्यन्त संतोष के साथ उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे–

जिस प्रकार बाल चन्द्रमा के उदय से लोगों को आनन्द होता है एवं समुद्र वृद्धि को प्राप्त होता है, उसी प्रकार है भगवन्! हम लोगों को परमानन्द प्रदान करने के लिए एवं धर्मरूपी विशाल समुद्र की वृद्धि हेतु बाल चन्द्रमा के समान आपका उदय हुआ है।।34-35।। रतोंध आदि के द्वारा अन्धे कूप में पड़ा हुआ प्राणी थोड़ा-सा सहारा पाकर ही ऊपर आ जाता है। हे देव! मोह से मूढ़ प्राणी संसार के अन्दर मिथ्या ज्ञानरूपी अंधेरे कुएं में पड़े हुए हैं। इस समय इन्हें उस कुएं से निकालने के लिए कोई भी समर्थ नहीं है। हे करुणासागर भगवान! आप ही दया से गद्गद हो अपने हाथ का सहारा दे उन्हें निकालेंगे एवं उनका उद्धार करेंगे।।36।। हे नाथ! आप समस्त जगत् के भर्ता–पोषण करने वाले हो। अचिंत्य एवं अनुपम शक्ति के धारक आप ही हो। हे देव! मोक्षरूपी कन्या आपको अपना वर बनाने की इच्छा रखती है। हे तीन लोक के नाथ! आप ही धर्मरूप हो एवं आप ही धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति के करने वाले हो।।37।। हे भगवान! स्नान नहीं किए जाने पर भी आप पवित्र शरीर के धारक हो एवं सज्जनों को पवित्र करने वाले हो। हे नाथ! आप ही समस्त लोक के अलौकिक भूषण हो एवं जिस पर कभी भी आवरण नहीं आ सकता, आप ही ऐसे दैदीप्यमान सूर्य हो।।38।। हे प्रभो! संसार में तीनों लोक के नाथ आप ही हैं। समस्त जीवों के हित एवं कल्याण के कर्ता भी आप ही हैं; क्योंकि हे भगवन! बालक[1] अवस्था में ही समस्त मोक्षाभिलाषी जीवों के मोहरूपी पाश को नष्ट करने वाले आप ही होंगे।।39।। हे समस्त गुणों के समुद्र भगवान! सम्यग्दर्शन आदि जितने भी संसार के अंदर अनुपम एवं प्रशस्त गुण हैं, आपकी कृपा से ही वे वृद्धि को प्राप्त होंगे–अर्थात् आप अपने अनुपम ज्ञान से उनका स्वरूप समझावेंगे, तब सज्जन पुरुष उन्हें अखण्डरूप से प्राप्त करने की अभिलाषा करेंगे तथा संसार में डुबाने वाले जो राग आदि दोष सज्जनों के हैं, वे आपकी कृपा से ही नष्ट होंगे।।40।। हे देव! संसार में न तो कोई आपके समान समस्त जगत् का बन्धु है, न आपके समान कोई समस्त जगत् का गुरु है, अपना एवं पराया हित करने वाला भी आपके समान अन्य कोई नहीं। हे नाथ! आपके समान पवित्र आत्मा का धारक भी कोई संसार के अन्दर दृष्टिगोचर नहीं।।41।। हे भगवन! आप का शरीर स्वेद (पसेव) रहित है, इसलिए पसेव रहित उत्तम शरीर के धारक आपके लिए नमस्कार है। आपका शरीर मल-मूत्र रहित–निर्मल है; इसलिए आपके लिए नमस्कार है। आपके शरीर के अन्दर निन्दित रक्त नहीं; किन्तु महामनोहर क्षीर समुद्र के जल के समान महास्वच्छ रक्त है; इसलिए क्षीर समुद्र के जल के समान रक्त से परिपूर्ण अंग के धारक आपके लिए नमस्कार है। हे नाथ! आप समचतुरस्र संस्थान के धारक हैं; इसलिए आपके लिए नमस्कार है। हे भगवान! आप आदि संहनन वज्रवृषभनाराच* संहनन के धारक हैं एवं आपका दिव्य रूप है; इसलिए

आपके लिए नमस्कार है। आपका शरीर अत्यन्त सुगन्धि का धारक है एवं 1008 शुभ लक्षणों से शोभायमान है; इसलिए आपके लिए नमस्कार है।।42-43।। हे देव! जिसका किसी प्रकार का अनुमान नहीं किया जा सकता, ऐसे अनुपम पराक्रम के आप धारक हैं एवं सर्वदा हितकारी मार्ग सुझाने वाले हैं, इसलिए आपके लिए नमस्कार है। हे प्रभो! आप परिमित एवं समीचीन बोलने वाले हैं, इस प्रकार साथ-साथ ही उत्पन्न होने वाले दस अतिशयों से अत्यन्त शोभायमान हैं, अर्थात् उत्पत्ति के समय दस आपके अतिशय होते हैं, वे अन्य किसी के नहीं हो सकते; इसलिए आपके लिए नमस्कार है।।44।। हे भगवान्! ऊपर जितने गुणों का उल्लेख किया गया है, उनसे भिन्न भी अपरिमित गुणों के आप भण्डार हैं एवं महादीप्तिमान ज्ञानरूपी नेत्र के धारक हैं; इसलिए आपके लिए नमस्कार है। हे प्रभो! आप समस्त जगत् को अलौकिक आनन्द प्रदान करने वाले हैं एवं अत्यन्त दुर्लभ मोक्षकारी लक्ष्मी के प्यारे आप ही हैं; इसलिए आपके लिए नमस्कार है।।45।। हे जगन्नाथ! आपकी स्तुति कर हम आपसे यह प्रार्थना करना नहीं चाहते कि आप हमें समस्त जगत् की लक्ष्मी प्रदान करें; परन्तु प्रभो! प्रार्थना यही है कि जिस अलौकिक ऐश्वर्य को आपने प्राप्त किया है, जिसके सामने सारे संसार की विभूतियाँ तुच्छ हैं, कृपा कर उस परमोत्तम ऐश्वर्य को हमें भी प्रदान कीजिए।।46।। इस प्रकार तीन जगत् के नाथ भगवान श्री मल्लिनाथ की स्तुति कर परमानंद से गद्गद् होकर इंद्रों ने अपने आज्ञाकारी देव एवं देवांगनाओं के साथ उन्हें मस्तक झुकाकर भक्तिपूर्वक नमस्कार किया।।47।। कर्म आदि शत्रुओं के जीतने वाले भगवान श्रीमल्लिनाथ **मल्लिका** पुष्प की सुगन्धि से भी उत्कट सुगन्धि वाले दिव्य शरीर के धारक थे; इसलिए देवों ने उनका **अन्वर्थ नाम श्रीमल्लिनाथ** रखा था।।48।। देवगण मेरू पर्वत पर जिस समय समस्त कार्य समाप्त कर चुके, उस समय जो कुछ उनके जन्म-कल्याणक सम्बन्धी कार्य शेष बचा था, उसे पूरा करने के लिए वे तीन जगत् के गुरु भगवान श्रीमल्लिनाथ को लेकर पहले के ही समान बड़े ठाट-बाट से पुनः मिथिलापुरी लौट आये।49।। राजा कुम्भ के आँगन में एक महामनोहर विशाल सिंहासन विद्यमान था। समस्त अंगों में पहने हुए भूषणों से भूषित भगवान श्रीमल्लिनाथ को इन्द्र ने बड़े आनन्द से उस पर विराजमान किया।।50।। इन्द्राणी भगवान के गर्भ गृह में गई एवं माता को जगाया तथा बंधु बांधवों के साथ राजा कुम्भ की मायामयी निद्रा दूर की। जहाँ पर भगवान श्री मल्लिनाथ को विराजमान किया था, वहाँ पर वे आये एवं आनन्द से गद्गद् होकर उदय को प्राप्त तेजपुंज के समान अपने पुत्र को देखा।।51।। मेरु पर्वत पर जो भी अभिषेक के समय कार्य किया गया था, वह सब भगवान के माता-पिता से इन्द्र ने आनन्दपूर्वक निवेदन किया। उत्तमोत्तम वस्त्र, आभूषण एवं माला आदि से समस्त देवों के साथ भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की तथा 'आप समस्त लोक में धन्य हैं, पूज्य हैं, उत्कृष्ट हैं, मान्य हैं, स्तुति करने योग्य हैं, सौभाग्य के पार को प्राप्त हैं। अर्थात् आपसे बढ़कर कोई भाग्यवान नहीं है। विशेष क्या? जब आप स्वयं तीर्थंकर भगवान के माता-पिता हैं, तब समस्त लोक के आप माता-पिता हैं'' इस

प्रकार मनोहर शब्दों में भक्तिपूर्वक इन्द्र ने उनकी स्तुति की।।52-53।। तत्पश्चात् इन्द्र के कहे अनुसार भगवान श्री मल्लिनाथ के पिता राजा कुम्भ ने पुरवासी एवं अपने बन्धु-बांधवों के साथ श्री जिनेन्द्र भगवान के मंदिर में महापूजा एवं अभिषेक आदि का महान उत्सव किया।।54।। महोत्सव के बाद अनेक प्रकार की बन्दनवारें ध्वजाएँ एवं गीत, नृत्य तथा वाद्य आदि से मिथिलापुरी में भी बड़ा उत्सव मनाया गया।।55।। भगवान के पिता राजा कुम्भ ने अनेक प्रकार के दान देकर अनेक बन्धुओं, दीन, अनाथ तथा बंदियों आदि की भी इच्छाएँ अच्छी तरह पूर्ण कर दी थीं।।56।। जिस समय समस्त नगर निवासी जन आनंद में मग्न थे, उसी समय भगवान के माता-पिता आदि के साथ विशिष्ट सहानुभूति प्रदर्शित करने के लिए इंद्र ने अपनी देवियों के साथ अत्यंत आनन्दमयी नृत्य किया, जो कि सुहावना लगने वाला बड़ा मनोहर था। नृत्य करते समय कभी छोटा आकार, तो कभी बड़ा आकार–इस प्रकार अनेक आकार मालूम पड़ते थे। कभी अत्यंत निकट में जान पड़ता था तथा कभी अत्यंत दूर में जान पड़ता था। बीन, बाँसुरी, मृदंग आदि अनेक प्रकार के वाद्य बजते थे एवं अनेक प्रकार के गाने होते थे, अनेक प्रकार से शरीर का हिलना-डुलना होता था; इसलिए इन विशिष्ट बातें से वह नृत्य समस्त जगत् को आश्चर्य कराने वाला महामनोहर जान पड़ता था।।57-59।। जब नृत्य का कार्य समाप्त हो चुका, उस समय धात्री के वेषवाली देवियों को तथा भगवान की ही अवस्था वाले उनके ही समान रूप के धारक तथा अनेक प्रकार के वेषों के धारण करने वाले बहुत से देव कुमारों को उनकी सेवा, शुश्रूषा तथा साथ-साथ खेलने के लिए नियुक्त कर दिया। इसलिए वे बराबर उनकी सेवा, शुश्रूषा करने लगे एवं साथ-साथ खेलने लगे। इस प्रकार तीर्थंकर के प्रति अनेक प्रकार की भक्ति प्रदर्शित कर तथा उससे जायमान अनेक प्रकार का पुण्य उपार्जन कर समस्त देव स्वर्ग को एवं अपने-अपने स्थानों को चले गए।।60-61।। जिन देव कुमारों को तीर्थंकर की सेवा, शुश्रूषा तथा उनके साथ खेलने के लिए नियुक्त किया गया था, वे देव कभी गजराज का रूप बनाकर, तो कभी अश्व का रूप बनाकर तो कभी बन्दर आदि का रूप बनाकर तीर्थंकर के साथ क्रीड़ा करते थे तथा उनकी सेवा के लिए जो देवियाँ नियुक्त थीं, वे भी बड़ी भक्ति से उनका आदर-सत्कार करती थीं। उनमें कोई-कोई देवियाँ तो तीर्थंकर को अनेक प्रकार की मण्डन हेतु वस्तुओं से मण्डित करती थीं, बहुत सी सुगन्धित जल से उन्हें स्नान कराती थीं एवं बहुत-सी अनेक प्रकार के भूषण उन्हें पहिनाती थीं।।62-63।। वे भगवान श्रीमल्लिनाथ मन्द-मन्द हास्य करते थे अर्थात् पुलकते थे। मणिमयी भूमि पर रेंगते थे, इसलिए बाल्य-अवस्था की अनेक प्रकार की क्रीड़ा तथा पुलकन आदि से वे माता-पिता को परमानन्द प्रदान करते थे।।64।। जिस प्रकार चन्द्रमा नाना प्रकार की कलाओं से उज्ज्वल रहता है तथा देखने वालों के नेत्रों को आनन्द तथा आमोद प्रदान करता है, उसी प्रकार उन भगवान श्रीमल्लिनाथ का भी शैशव काल दिव्य था, चन्द्रमा के समान अनेक प्रकार के कला-कौशलों से दैदीप्यमान था एवं बन्धु बांधव तथा देवों आदि के नेत्रों को अत्यंत

आनंद तथा उत्साह का प्रदान करने वाला था।।65।। उन भगवान के मुखकमल से मन्मन् स्वरूप स्पष्ट भाषा निकलती थी एवं मणिमयी भूमि पर खेलते हुए वे पग-पग पर गिरते-पड़ते थे।।66।। अपने योग्य महामनोज्ञ अन्न-पान आदि के आहार से उनका शरीर क्रम से दिनों-दिन बढ़ता जाता था। एवं जिस प्रकार शरीर बढ़ता चला जाता था, उसी प्रकार महामनोहर अंग-प्रत्यंग फैलते चले जाते थे एवं निरंतर बुद्धि, ज्ञान तथा गुण आदि की भी वृद्धि होती चली जाती थी।।67।। मति, श्रुति तथा अवधिरूपी तीन ज्ञान के धारक तीर्थंकर को बाल्यावस्था के बीत जाने पर जिस समय कुमार अवस्था प्रकट हुई थी, उस समय ज्ञान-विज्ञान तथा बुद्धि आदि गुण अपने-आप वृद्धि को प्राप्त होने लगे थे।।68।। कुमार अवस्था में माता-पिता को परमानन्द प्रदान करने वाले तीर्थंकर ने अनेक निर्मल गुणों के साथ धीरे-धीरे क्रम से अत्यन्त शुभ यौवन अवस्था को भी प्राप्त कर लिया था।।69।। उस समय सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र स्वयं के कल्याण प्राप्ति की अभिलाषा से कभी-कभी वीणा आदि वाद्यों से, कभी-कभी नृत्य करने वाली देवांगनाओं के कौतुक से, कभी-कभी काव्य आदि की गोष्ठियों से, कभी-कभी अनेक रूप एवं हावभाव आदि को धारण करने वाली चेटक विद्याओं से एवं कभी-कभी अन्य प्रकार के विनोद एवं कौतूहलों से तीर्थंकर को अत्यन्त प्रसन्न रखता था।।70-71।। देवगण अवस्था एवं समय के योगय माला, वस्त्र एवं भूषण तीर्थंकर को पहनाया करते थे, इसलिए अवस्था के योग्य देवों द्वारा पहनाए गए माला, वस्त्र एवं भूषणों से अलंकृत शरीर के धारक तीर्थंकर अपनी उग्र कान्ति से चन्द्रमा को जीतने वाले थे, इसलिए उस समय वे अत्यन्त शोभायमान जान पड़ते थे।।72।। तीर्थंकर का शरीर एक हजार आठ लक्षणों से शोभायमान था, परम औदारिक था एवं उपमारहित था; इसलिए वह अत्यन्त शोभायमान जान पड़ता था।।73।। नीले-नीले घुँघराले बालों से शोभायमान तीर्थंकर का मस्तक जिस समय मुकुट से अलंकृत होता था, उस समय वह देव सम्बन्धी माला को धारण करने वाला महामनोहर मेरु पर्वत का श्रृंग सरीखा जान पड़ता था।।74।। अपनी अनुपम कान्ति से समस्त दिशाओं को व्याप्त करने वाला तीर्थंकर का अत्यन्त विशाल ललाट अतिशय शोभायमान जान पड़ता था एवं उनकी महामनोहर भृकुटियों एवं दोनों विशाल नेत्र अत्यन्त शोभित जान पड़ते थे।75।। तीर्थंकर के दोनों कान मणिमयी कुण्डलों की किरणों से अत्यन्त शोभायमान थे। अपनी अनुपम दीप्ति से चन्द्रमा को जीतने वाले उनके दोनों कपोल भी महामनोज्ञ थे एवं उनकी ऊपर को उठी हुई ऊँची नासिका महामनोहर थी।।76।। जिस प्रकार चन्द्रमा से अमृत झरता है एवं वह विष का हरने वाला होता है (ऐसी प्रख्याति है) उसी प्रकार तीर्थंकर के मुखचन्द्र से प्रतिदिन दिव्य भाषारूपी अमृत झरता था, जो कि मृत्युरूपी महा हलाहल विष का हरण करने वाला था, इसलिए अनुपम गुणों के धारक उन तीर्थंकर का जितना भी वर्णन किया जाय सो थोड़ा है।।77।। तीर्थंकर अपने वक्षःस्थल में मणिमयी हार पहनते थे एवं वह नाभिमंडल पर्यन्त लटकता रहता था; उस मणिमयी हार से उनके वक्षःस्थल एवं नाभि दोनों ही अत्यन्त शोभायमान जान पड़ते थे। उनकी दोनों भुजायें केयूरों

(भुजबन्धों) से शोभायमान रहती थीं एवं वे कल्पवृक्ष की लता सरीखी जान पड़ती थीं।।78।। तीर्थंकर का महामनोहर कटिभाग करधनी एवं उत्तम वस्त्र से शोभायमान रहता था। उनकी दोनों जंघायें केले के खम्भों के समान अत्यन्त कोमल थीं।।79।। तीर्थंकर के चरणकमलों की सेवा तीनों लोक के इन्द्र सदा किया करते थे एवं वे नखरूपी चन्द्रमाओं से शोभायमान रहते थे; इसलिए उनके असली रूप का वर्णन करने में कोई भी समर्थ नहीं था।।80।। इस प्रकार ऊपर कहे गए अनेक प्रकार के वर्णनों से युक्त अत्यन्त मजबूत वज्रमयी हड्डियों से बना हुआ आदि संहनन–वज्रवृषभ नाराच संहनन से युक्त आदि संस्थान समचतुरस्र संस्थान से शोभायमान, पच्चीस धनुष प्रमाण ऊँचा, तपे हुए सुवर्ण के समान कांति का धारक, स्वभाव से ही सुन्दर, दिव्य संसार में जितने भी पुण्यस्वरूप परमाणु थे, उनके समूह-स्वरूप तीर्थंकर का अनुपम औदारिक शरीर, दिव्य आभूषण, महा वस्त्र, कांति एवं यौवन आदि की परिपूर्ण शोभा से अत्यन्त लावण्यमान जान पड़ता था।।81-83।। भगवान श्रीमल्लिनाथ की आयु पचपन हजार वर्ष की थी। वह समस्त प्रकार की बाधाओं से रहती थी। अपने-पराये का हित करने वाली थी एवं अखण्डित थी।।84।। तीर्थंकर ने सौ वर्ष पर्यंत उत्तमोत्तम भोग भोगे थे जो कि मनुष्य लोक में देवों के द्वारा उपनीत थे, कुमार तीर्थंकर के योग्य थे एवं उनका उदय अशुभ नहीं होकर शुभ था।।85।।

एक समय अपनी युवावस्था में अनेक देव, विद्याधर एवं राजाओं से सेवित, भगवान श्रीमल्लिनाथ सानन्द विराजमान थे कि उनके पिता पुत्र-स्नेह से प्रेरित होकर उनके पास आये एवं ''आगे भी वंश की वृद्धि हो'' इस अभिलाषा से वे भक्तिपूर्वक उनसे यह कहने लगे–''प्रिय पुत्र! bl hi Fohe My i j , d **पृथ्वीपुर** नाम का नगर है। उसका पालन करने वाला **राजा भूपाल** है, उनके एक ''**जगद्रति**'' नाम की कन्या है, जो कि अपने अनुपम रूप एवं गुणों से पृथ्वी पर प्रसिद्ध है–वह तुम्हारे सर्वथा योग्य है। मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि तुम उसके साथ विवाह करना स्वीकार करो''।।89-87।। समस्त प्रकार के चातुर्यों के जानकार भगवान श्रीमल्लिनाथ ने अपने पिता से जगद्रति के साथ विवाह करना स्वीकार कर लिया एवं वे अनेक नृपों एवं देवों से वेष्टित होकर बड़ी विभूति के साथ विवाह के लि चल दिये। मिथिलापुरी उस समय रंग-बिरंगी ध्वजाओं की पंक्तियों से भाँति-भाँति के नृत्य एवं वाद्य आदि से जायमान सैकड़ों प्रकार के महोत्सवों से शोभित थी। राजद्वार से निकलकर तीर्थंकर पृथ्वीपुर की ओर जाने लगे। अपने पहले जन्म में उन्होंने अपराजित विमान की विभूति का उपभोग किया था, इसलिए मिथिलापुरी की अद्वितीय शोभा देखकर उन्हें अपराजित विमान का स्मरण हो आया। उन्हें उसी समय संसार एवं शरीर भोगों से वैराग्य हो गया एवं अवधिज्ञान के धारक वे भगवान श्री मल्लिनाथ अपने चित्त में इस प्रकार का विचार करने लगे।।88-89।।

–अपराजित विमान के अन्दर जिन भोगों का भोग किया गया, वे भोग महामनोज्ञ थे, तृप्ति को देने वाले उत्कृष्ट थे, अनुपम थे एवं सुख के कारण थे। जब यह जीव उन विपुल भोगों से

भी तृप्त नहीं हुआ, तब क्या यह इस लोक के ऐसे भोगों से तृप्त हो सकता है? जो भोग बड़े दु:ख से प्राप्त होते हैं, अनेक प्रकार के दु:खों को देने वाले हैं, शरीर को नष्ट-भ्रष्ट करने वाले हैं, अत्यन्त तुच्छ हैं एवं आधि-व्याधि आदि अनेक व्यथाओं के समुद्र हैं।।91-92।। ईंधन के विपुल ढेर से अग्नि की तृप्ति नहीं हो सकती, परन्तु कदाचित दैवयोग से उस ईंधन से अग्नि की तृप्ति हो जाय; अनेक नदियों के प्रवाहों से समुद्र की तृप्ति नहीं होती, परन्तु कदाचित दैवयोग से उसकी भी तृप्ति हो जाय! अनेक प्रकार के धन के संग्रह से लोभी पुरुष की तृप्ति नहीं हो सकती, परन्तु दैवयोग से कदाचित् उसकी भी तृप्ति हो जाय—परन्तु जो पुरुष विषयों में आसक्त (कामी) है, उसकी भले प्रकार भोगे जाने वाले अनन्त भवों से प्राप्त होने वाले (जिनका मिलना बड़ी कठिनता से है एवं जिनको छोड़ते समय भी महाकष्ट जान पड़ता है) ऐसे भोगों से कभी भी तृप्ति नहीं हो सकती है।।93-94।। मन में बहुत भोगों की लालसा रखने के कारण भी यह जीव इतने विपुल काल पर्यन्त अनेक प्रकार के दु:खों को भोगता-भोगता इस दुष्ट संसाररूपी महाभयानक वन के अन्दर चक्कर लगाता फिर रहा है एवं भोगों में अत्यन्त आसक्त होने के कारण इसे वास्तविक मार्ग का ज्ञान नहीं होता।।95।। यह भोगों की तीव्र अभिलाषा संसार में अनेक प्रकार के अशुभों को उत्पन्न करने वाली है, जब तक यह चित्त के अन्दर विद्यमान है, तब तक कभी भी जीवों को मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती है एवं जब तक मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है, तब तक वास्तविक सुख भी प्राप्त नहीं हो सकता है इसलिए यह भोगों की अभिलाषा ही वास्तविक सुख की बाधक है।।96।। इसलिए जो पुरुष भोगों के स्वरूप के वास्तविक रूप से जानकार हैं एवं मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि वे भोगों का स्वरूप अच्छी तरह जानकर सबसे पहले इन भोगों को दूर से ही छोड़ें। क्योंकि ये भोग साक्षात् सर्प के समान हैं; अर्थात् सर्प जिसे डस लेता है, फिर शीघ्र उछंगता नहीं, उसी प्रकार भोगरूपी सर्पों का डसा हुआ भी शीघ्र नहीं उछंगता तथा ये भोग हलाहल विष के समान हैं अर्थात् जिस प्रकार हलाहल विष को पीनेवाला बचता नहीं है, उसी प्रकार भोगों का काटा हुआ भी नहीं बचता। इसीलिए ये विषय शत्रु स्वरूप है, क्योंकि इनसे किसी प्रकार की भलाई की आशा नहीं है।।97।। इसीलिए जो महानुभाव मुमुक्षु हैं, संसार के समस्त प्रकार के बन्धनों को तोड़कर केवल मोक्ष ही चाहने वाले हैं, उन्हें विवाह आदि का कार्य सर्वथा छोड़ देना चाहिए। क्योंकि यह विवाह आदि का कार्य अत्यन्त लज्जा का कारण है, मोक्ष सुख का घात करने वाला है एवं संसार में घुमाने वाला है।।98।। और भी यह बात है कि यह विवाह मिथ्या मंगलों से युक्त है; अर्थात् विवाह में जितने भी मंगलाचरण किए जाते हैं, वे सब मिथ्या हैं। समस्त दु:ख आदि विपत्तियों का समुद्र है एवं विवाह होते ही सैकड़ों प्रकार की चिन्ताएँ पीछे लग जाती हैं; इसलिए यह सैकड़ों प्रकार की चिन्ताओं का कारण है; इसलिए यह विवाह कभी भी कल्याण का करने वाला नहीं हो सकता—जो महानुभाव इसे कल्याण का करने वाला समझते हैं, उन्हें केवल भ्रम ही है।।99।। मनुष्य आदि का शरीर साँकल

से जकड़ कर बाँधा जाता है; परन्तु यह 'स्त्री' साँकल के बिना ही भीतर-बाहर दोनों प्रकार से बाँधने वाली है; अर्थात् अंतरंग में मोह की तीव्रता से मनुष्य स्त्री को छोड़ कर नहीं जा सकता एवं बाहर में जब छोड़कर चलता है, तब वह उसके पीछे पड़ती है; इसलिए भी छोड़कर नहीं जा सकता। यह स्त्री खोटे फलों को धारण करने वाली संसार रूपी बेल है, अर्थात् बेल पर अच्छे-बुरे सब प्रकार के फल आते हैं, परन्तु स्त्री रूपी संसार बेल से सदा दुष्ट फलों की ही प्राप्ति होती है। विशेष क्या? यह स्त्री साक्षात् नरक का मार्ग है।।100।। पुत्र जिनको कि संसार में उत्कृष्ट पदार्थ माना जाता है, वे महा शत्रु हैं एवं संसार के समस्त धन-धान्यों का भक्षण करने वाले हैं। लक्ष्मी जो कि संसार में बहुत बड़ी वस्तु मानी जाती है, इन्द्रजाल के समान निस्सार है; क्योंकि जिस प्रकार इन्द्रजाल का ठाट-बाट देखते-देखे विलीन हो जाता है, उसी प्रकार लक्ष्मी का वैभव भी देखते-देखते विलीन हो जाता है तथा यह कुटुम्ब साक्षात् पाश के समान है।।101।। प्रात:काल में जिस प्रकार दर्भ की अनी पर लगी हुई जल की बूँद अत्यन्त चंचल व क्षण में विनाश होती है, उसी प्रकार मनुष्यों का जीवन भी अत्यन्त चंचल एवं विनाशवान तथा इन्द्रियों के विषय, बन्धु-बाँधव आदि स्वजन एवं संसार के समस्त काम-भोग क्षणभंगुर हैं।।102।। इसलिए जो पुरुष विचक्षण हैं, वास्तविक रूप से संसार के स्वरूप के जानकार हैं, उन्हें बाल्यावस्था में ही सम्यक्चारित्र को ग्रहण कर लेना चाहिए एवं प्रतिक्षण अपनी मृत्यु की आंशका कर उन्हें बहुत शीघ्र मोक्ष की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए।।103।। जब से जीव उत्पन्न होता है, तभी से यह यमराज, दिन, पक्ष, मास आदि के हिसाब से जीव को मृत्यु के मुख में प्रविष्ट कराने का प्रयत्न करता है। इसलिए धर्म के अन्दर इस प्रकार समय का विलम्ब नहीं करना चाहिए कि हम आज धर्म सेवन नहीं करेंगे, तो कल कर लेंगे या यह समय विषय-भोग भोगने का है, वृद्धावस्था में जाकर धर्म कर लेंगे; क्योंकि मृत्यु का कोई ठिकाना नहीं है।।104।।

संसार के अन्दर इन्द्रियाँ, आयु, गृह, राज्य, भोगोपभोग, परिवार एवं लक्ष्मी आदि जितने भी पदार्थ हैं, वे सब—जिस प्रकार विद्युत चमक कर शीघ्र नष्ट हो जाने वाली है—उसी प्रकार नष्ट हो जाने वाले हैं। यदि संसार में शरणदाता है, तो वह एक समीचीन धर्म ही है। धर्म के सिवाय मृत्यु के मुख से बचाने वाला कोई भी शरण नहीं है। यह संसार अत्यन्त भयानक है, अतिशय चंचल है। अनेक प्रकार के दु:खों का समुद्र है एवं अनेक प्रकार के अकल्याणकों का करने वाला है। ऐसे महा भयानक संसार में यह बिचारा दीन जीव अकेला ही अपने-आप कर्मों के फल से महादु:खित होकर भ्रमण करता फिरता है। इसे रंचमात्र भी शान्ति नहीं मिलती है।105।। आत्म पदार्थ ज्ञानी है। आत्मा से भिन्न शरीर कुटुम्ब एवं समस्त कर्म स्वभाव से ही महा अज्ञानी है। यह शरीर जिसका कि लोगो को घमण्ड है, वह यमराज के रहने का स्थान है। अनेक प्रकार के दु:खों का समुद्र है एवं रक्त, मास आदि जितने भी अपवित्र पदार्थ हैं, उन सबका खजाना है तथा कर्मों का आस्रव, मिथ्यात्व, अविरति आदि कारणों से जायमान है, अनन्तकाल पर्यन्त संसार में घुमाने

वाला है एवं नाना प्रकार के दु:खों का देने वाला है। तथा संवर पाप कर्मों का रोकने वाला है दु:ख का हरण करने वाला है एवं मोक्ष को प्रदान करता है।।106।। संवर के बाद निर्जरा होती है, वह निर्जरा समस्त अशुभ कर्मों की क्षय करने वाली है; उत्कृष्ट तप से जायमान है एवं मोक्ष को प्रदान करने वाली है तथा यह लोक दु:ख एवं सुख का स्थान है, अत्यन्त विषम है, अनादि है एवं ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक, पाताललोक के भेद से तीन प्रकार का सदा रहने वाला है। संसार में मनुष्य भव का पाना, समस्त इन्द्रियों का पूरा उत्तम होना, कुल का मिलना एवं सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र स्वरूप बोधि का होना, महादुर्लभ है–बड़ी कठिनाई से इन की प्राप्ति होती है। धर्म समस्त संसार के सुखों का स्थान है। उत्तम क्षमा 1, उत्तम मार्दव 2, उत्तम आर्जव 3, उत्तम शौच 4, उत्तम सत्य 5, उत्तम संयम 6, उत्तम तप 7, उत्तम त्याग 8, उत्तम आकिंचन्य 9 एवं उत्तम ब्रह्मचर्य 10 के भेद से दस प्रकार का है एवं संसार के अन्दर जितने भी दु:ख हैं, उन सबका सर्वथा नाश करने वाला है।।107।। इस प्रकार अनित्य 1, अशरणत्व 2, संसार 3, एकत्व 4, अन्यत्व 5, अशुचित्व 6, आस्रव 7, संवर 8, निर्जरा 9, लोक 10, बोधिदुर्लभ 11 तथा धर्म 12–इन बारह भावनाओं का अपने निर्मल चित्त में विचार करने से उन कुमार भगवान श्रीमल्लिनाथ को संसार शरीर तथा विषय सुख आदि से मोक्ष प्राप्ति का प्रधान कारण संवेग हो गया। उस समय सिवाय आत्म स्वरूप के कोई भी उन्हें अपना न सूझने लगा।।108।।

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति कृत संस्कृत भाषा में श्री मल्लिनाथ चरित्र की पं. गजाधरलाल जी न्यायतीर्थ विरचित हिन्दी वचनिका में भगवान श्री मल्लिनाथ की वैराग्य का वर्णन करने वाला पाँचवाँ परिच्छेद समाप्त हुआ।।5।।

दीक्षा कल्याणक

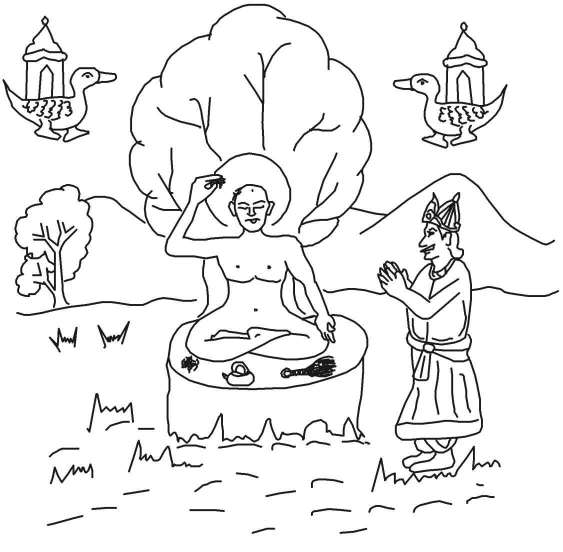

छठा परिच्छेद

निर्दग्धं येन वाल्येऽपि विषयारण्यमंजसा।
सार्ध दुष्कर्मवृक्षौथैस्तपोऽग्निनात्र तं स्तुवे॥

जिन भगवान श्रीमल्लिनाथ ने तपरूपी जाज्वल्यमान अग्नि के द्वारा विषयरूपी विस्तीर्ण वन को मयदुष्कर्मरूपी वृक्ष की श्रेणी के बाल्य अवस्था में ही देखते-देखते भस्म कर डाला, उन बाल ब्रह्मचारी श्रीजिनेन्द्र को मैं भक्ति-भाव से प्रणाम करता हूँ॥1॥ संसार तथा शरीर-भोगों से विरक्त होकर जिस समय भगवान श्रीमल्लिनाथ बारह भावनाओं का चिन्तवन कर रहे थे, उसी समय लौकान्तिक देव, जो कि अपने परम पवित्र भावों से देवों में '**ऋषि**' कहे जाते हैं, महा चतुर होते हैं, स्वभाव से ही ब्रह्मचारी होते हैं, एक भवावतारी होते हैं–अर्थात् मनुष्य भवधारण कर के ही मोक्ष चले जाते हैं, अतएव पूज्य होते हैं, चौदह पूर्वों के धारक होते हैं एवं सारस्वत आदित्य आठ जिनके भेद हैं, वे शीघ्र ही भगवान के समीप आये तथा मस्तक झुकाकर नमस्कार किया एवं भक्ति से गद्गद् होकर भगवान श्रीजिनेन्द्र की इस रूप से स्तुति करने लगे–

हे देव! आप तीन जगत् के स्वामी हो, संसाररूपी अगाध समुद्र में डूबते हुए प्राणियों की रक्षा करने वाले आप ही हैं। हे तीर्थों के राजा! इस लोक में इस समय धर्मतीर्थ के प्रवर्तक आप ही हैं॥2-4॥ हे प्रभो! आप समस्त जगत् के अकारण बन्धु हैं, कृपानाथ हैं एवं आप ही स्वयं मुक्तिरूपी स्त्री के स्वामी होने वाले हैं॥5॥ लोग ऐसा समझते हैं कि जिस समय भगवान तीर्थंकर को वैराग्य होता है, उस समय लौकान्तिक देव उन्हें आकर सम्बोधित करते हैं तथा उनके वैराग्य को दृढ़ करते हैं। परन्तु हे भगवान्! यह कहना कल्पनामात्र है; क्योंकि जिस प्रकार अखण्ड दीप्ति का भण्डार सूर्य स्वयं प्रकाशमान है, उसे प्रकाशित करने के लिए दीपक की आवश्यकता नहीं पड़ती, उसी प्रकार हे नाथ! उत्तम ज्ञान के धारक आप इन सबों को सम्बोधित करने वाले हैं–हमें समीचीन मार्ग के सुझाने वाले हैं, हमारे द्वारा कभी भी आप सम्बोधित नहीं किए जा सकते, अर्थात् हमें आपको सम्बोधन करने वाला कहना, सूर्य को दीपक दिखाना है॥6॥ हे भगवान्! आप स्वयं उत्पन्न होने वाले हैं; इसलिए आप स्वयम्भू हैं। आपको सम्बोधन करने वाला कोई अन्य नहीं–स्वयं को सम्बोधन करने वाले आप हैं; इसलिए आप स्वयंबुद्ध हैं; समस्त लोक-अलोक को जानने के कारण आप सर्वज्ञ हैं; ज्ञानरूपी नेत्र के धारक हैं। हे देव! आपने जो विचार किया है, वह अपना-पराया हित करने वाला है, इसलिए वह सर्वथा उपयुक्त है; क्योंकि हे दयासागर भगवान! बाल्यावस्था में ही आपने वैराग्यरूपी तीक्ष्ण खड्ग के द्वारा अत्यन्त भयंकर कामदेव आदि के साथ मोहरूपी शत्रु को नष्ट कर महा कठिन सम्यक्चारित्र को धारण करने का साहस किया है॥7-8॥ अनेक प्रकार के भोगों को भोगकर जो पुरुष तृप्त होने पर भी उनसे विरक्त नहीं

होते, यह आश्चर्य है, अर्थात् तृप्ति हो जाने पर भोगों का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए; किन्तु जो ऐसा नहीं करते, वे बड़े आश्चर्य का काम करते हैं। परन्तु मोक्ष प्राप्ति के लिए सर्वथा उद्यत आपने भोगों को बिना भोगे ही उनका सर्वथा त्याग कर दिया, यह सबसे बढ़कर आश्चर्य की बात है। इसलिए हे नाथ! इस संसार में सबसे अधिक धन्यवाद के पात्र आप ही हैं। हे भगवान! बाल्यावस्था ही में आप राग को जीतने वाले हैं, अर्थात् किसी भी पदार्थ में आपका राग नहीं। सबसे अधिक राग का कारण स्त्री है, सो उसका बन्धन भी आपने नष्ट कर दिया–विवाह से ही विरक्त हो गए, इसलिए मुख में पहुँचते हुए ग्रास के त्याग के कारण अर्थात् राग के तीव्र बन्धन विवाह से सर्वथा मुंह मोड़ने तथा सम्यक्चारित्र में प्रवृत्त होने के कारण आप एक अद्वितीय व्यक्ति हैं, आपके समान कोई भी नर रत्न संसार के अन्दर नहीं है।।9-10।। हे प्रभो! आपके अन्दर महाज्ञान 'केवलज्ञान' का उदय होगा। उस केवलज्ञानरूपी जहाज का आश्रय लेकर अर्थात् उस केवलज्ञान की कृपा से यथार्थ उपदेश पाकर ये विद्वान भव्य प्राणी संसार रूपी बड़े गहरे समुद्र को तैर जावेंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।11।। गहरे जल से भरा हुआ गंगा आदि का तीर्थ जिस प्रकार मैल का काटने वाला माना जाता है, उसी प्रकार आपके वचन रूपी अमृत से परिपूर्ण विशाल धर्मरूपी तीर्थ को पाकर भव्य जीवों के दुष्कर्मरूपी मैल का समूह नियम से धुल जाएगा।।12।। हे देव! आपके ज्ञानरूपी ज्योत्स्ना की ही कृपा से मोह आदि रूप विपुल अन्धकार को नष्ट कर ये भव्यजीव इस संसार में मोक्ष के मार्ग को भली प्रकार देखेंगे।।13।। जिस प्रकार रत्नों के व्यापारी सेठ जहाज की सहायता से अपने अभीष्ट स्थान पर पहुँच जाते हैं, उसी प्रकार जो योगी रत्नत्रयी विशिष्ट धन के स्वामी हैं, वे जहाज के समान आपकी सहायता पाकर मोक्ष को प्राप्त होंगे।।14।। हे भगवन्! आपके द्वारा समीचीन धर्म का उपदेश सुनकर उत्तम धर्म का उपार्जन कर कोई-कोई भव्य **'सर्वार्थसिद्धि'** प्राप्त करेंगे। बहुत से स्वर्ग जायेंगे एवं बहुत से आपके समान लक्ष्मी प्राप्त करेंगे, अर्थात् आपके समान तीर्थंकर होकर अनन्त विभूति प्राप्त करेंगे।।15।। कोई-कोई दिव्य ग्रैवेयक में जन्म धारण करेंगे, कोई-कोई अत्यन्त पुण्यशाली चक्रवर्ती को होने वाले वैभव को प्राप्त करेंगे एवं कोई-कोई महानुभाव नियम से मोक्ष प्राप्त करेंगे, किन्तु उपदेश के बिना 'सर्वार्थसिद्धि' आदि विशिष्ट अभ्युदय के कारण स्थानों की प्राप्ति नहीं हो सकती।।16।। इसलिए हे देव! हमारी यह विनम्र प्रार्थना है कि आप अल्प काल भी विलम्ब नहीं कर शीघ्र ही संयम धारण करें, जिससे अपना-पराया अलौकिक हित हो; क्योंकि जब तक आप संयम नहीं धारण करेंगे, तब तक न तो आप अपना ही हित कर सकते हैं एवं न किसी दूसरे का ही।।17।। इस प्रकार तीर्थंकर के दीक्षा-कल्याणक की प्रशंसा करने वाले लौकान्तिक देवों ने पूर्वोक्त प्रकार से भगवान श्रीमल्लिनाथ की स्तुति कर,'आपको जो कुछ विभूति प्राप्त है, वह विभूति हमें भी प्राप्त हो' ऐसी प्रार्थना कर बारम्बार नमस्कार कर एवं मनोहर दिव्य वाक्यों से प्रशंसा कर अपना नियोग समाप्त किया तथा इन शुभ चेष्टाओं के द्वारा बहुत प्रकार से पुण्य

उपार्जन कर वे अपने निवास स्थान ब्रह्मलोक को सानंद चले गये।।18-19।।

लौकान्तिक देवों के चले जाने के बाद चारों निकाय के इन्द्रगण उनके तप कल्याणक की पूजा के लिए आये। वे देव उस समय बड़ी विशाल विभूति से मण्डित थे। गीत, नृत्य एवं वाद्य आदि से समस्त जगत को चकित करने वाले थे, अपनी-अपनी देवांगनाओं एवं आज्ञाकारी देवों से परिव्याप्त थे एवं अत्यन्त धर्मात्मा थे।।20-21।। मिथिलापुरी में आकर चारों निकाय के इन्द्रों ने अपने साथ में आए हुए देवों के साथ दीक्षा कल्याणक के उपलक्ष्य में क्षीरोदधि से भरे हुए मनोहर कलशों से तीर्थंकर का बड़े ठाट-बाट के साथ **अभिषेक** किया; उन्हें सिंहासन पर विराजमान कर उत्तमोत्तम भूषण, मालायें एवं मलयागिरि के वस्त्रों से उनका शृंगार किया।।22-23।। तीर्थंकर का इस प्रकार जिन दीक्षा के लिए उत्साह देखकर परम मोही उनके माता-पिता महाशोक एवं महादुख प्रगट करने लगे।। तीर्थंकर ने बड़े यत्न से उन्हें मनोहर वाणी से समझाया एवं दिलासा दी। तत्पश्चात् उन्होंने जीर्ण तृण के समान समस्त वैभव का परित्याग कर दिया एवं संयम धारण करने के लिए सर्वथा तत्पर हो गए।।25।।

भूषणों से शोभायमान वे तीर्थंकर इन्द्र के हाथ का सहारा लेकर उत्तमोत्तम मणियों से निर्मित जयन्ती* नाम की पालकी में शीघ्र ही सवार हो गए।।26।। जिस समय वे पालकी में बैठ गए, उस समय देवगण अपने श्वेत चमर हाथों में धारण कर उन पर ढोरने लगे; इसलिए उस समय वे ऐसे जान पड़ने लगे मानो तपरूपी लक्ष्मी के ये साक्षात् पति है।।27।। सबसे पहले सात पैड़ तक तो राजा अपने कन्धों पर रखकर उनकी पालकी को ले गए। उनके बाद आकाश में सात पैड़ तक उनकी पालकी विद्याधरगण ले गए। उनके पीछे सुर एवं असुरों ने उनकी पालकी अपने-अपने कन्धों पर रखी एवं आनन्द से गद्गद् वे मनुष्यों की दृष्टि के गोचर होकर आकाश में चलने लगे।।28।। उस समय मोहरूपी शत्रु पर विजय सम्बन्धी गीत, प्रस्थान मंगल, नाना प्रकार के बजने वाले वाद्य एवं नृत्य आदि करोड़ों उत्सवों के साथ तीन जगत् के गुरु तीर्थंकर के मोहरूपी शत्रु पर विजय की घोषणा करते हुए वे देव उस समय आनन्द से पुलकित थे एवं बड़े हर्ष से "हे देव! आपकी जय हो, जय हो", इस प्रकार उनके आगे-आगे 'जय-जय' शब्द का कोलाहल करते चल रहे थे।।29-30।। चारों ओर से घेर कर खड़े रहने वाले देवेन्द्रों द्वारा जिनका उपर्युक्त रूप से माहात्म्य प्रकट किया गया है, ऐसे वे भगवान श्रीजिनेन्द्र जिस समय मिथिलापुरी से बाहर निकले थे, उस समय पुरवासी लोगों ने उनका इस प्रकार अभिनन्दन किया था-

हे स्वामिन्! हे देव! आप मोक्षलक्ष्मी प्राप्त करने के लिए सिधारें। कर्मरूपी शत्रुओं के नाश करने में आप समर्थ हों। हे प्रभो! आपका मार्ग कल्याण का करने वाला हो। आप जयवन्त हों, नादें, विरदें एवं समस्त प्रकार के कल्याणकों को प्राप्त करने वाले हों।।32।। जिस समय भगवान तप के लिए जा रहे थे, उस समय उन्हें देखकर बहुत से चतुर पुरुष आपस में यह कह कर

अत्यन्त आश्चर्य करते थे कि देखो! यह बात बड़ी ही अचरज करने वाली है कि महान ऋद्धि के धारी, अद्भुत पराक्रमशाली ये श्रीजिनेन्द्र भगवान बालवस्था में ही नारी आदि लुभाने वाले पदार्थों से ममत्व त्याग कर संयम धारण करने के लिए चले जा रहे हैं।।33-34।। अन्य बहुत से मनुष्य यह कहते थे कि इसमें आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है। ये श्रीजिनेन्द्र भगवान कुछ कम समर्थ नहीं हैं; क्योंकि ये नियम से समस्त घातिया-कर्मों को नष्ट कर तीन लोक के राज्य को अपने वश में करना चाहते हैं एवं नियम से उसे अपने आधीन करेंगे।।35।। बहुत से चतुर पुरुष यह विचार प्रदर्शित करते थे कि इस संसार में विरले ही ऐसे पुरुष उत्पन्न होते हैं, जो कुमारावस्था में ही इन्द्रिय एवं कामदेव रूपी शत्रु को जीतने का पूरा-पूरा सामर्थ्य रखते हैं।।36।। इस प्रकार भिन्न-भिन्न उद्गार व्यक्त कर रहे थे, पुरवासी जनों से प्रशंसित होकर संयमरूपी लक्ष्मी के वर सरीखे जान पड़ने वाले वे श्री जिनेन्द्र भगवान उन पुरवासी जनों की दृष्टि से अदृश्य हो गए।।37।।

जिस समय श्रीजिनेन्द्र भगवान दीक्षा के लिए चले गए, तब उनकी माता प्रजावती को बड़ा दुःख हुआ। शोक से विह्वल होकर वह अपनी अन्तःपुर की रानियों एवं बन्धु बांधवों के साथ श्रीजिनेन्द्र भगवान के पीछे-पीछे चलने लगीं।।38।। रानी प्रजावती की दशा उस समय बड़ी करुण थी, दुःख की तीव्रता से उनके दोनों पैर लड़खड़ाये हुए जमीन पर गिरते थे, सिर के बाल बुरी तरह बिखर गए थे, शरीर की सारी कान्ति फीकी पड़ गई थी। 'हाय प्यारे पुत्र! तू मुझ अभागिनी को क्यों छोड़कर दीक्षा के लिए चल दिया'—इस प्रकार वह बारम्बार रोती थी एवं अपनी छाती कूटती थी।।39।। श्रीजिनेन्द्र भगवान के बन्धुगण उनको वियोगरूपी अग्नि से आपाद मस्तक दग्ध होकर मूर्च्छा से जमीन पर गिर गये एवं उन्हें उस समय इतना अधिक कष्ट हुआ था कि उन्हें अपने शरीर की रंचमात्र भी सुध-बुध नहीं थी।।40।। उनके वियोग से अत्यन्त दुःखित चित्त, बन्धुगण यह कहकर रुदन करते थे कि 'हे स्वामी श्रीजिनेन्द्र भगवान्! आप हमें छोड़कर कहाँ चले गये। अब कब हमें आपके दर्शन होंगे एवं आपके वियोग से महा दुःखित हम कैसे संसार में जीवित रह सकेंगे'।।41।। इस प्रकार अत्यन्त शोक परिपूर्ण वाक्यों से श्रीजिनेन्द्र भगवान के भृत्य, बन्धु-बाँधव तथा उनकी माता आदि स्त्रियाँ बड़े ऊँचे स्वरों में रोते-चिल्लाते थे तथा श्री जिनेन्द्र भगवान जिस मार्ग से दीक्षा वन को गए थे, उसी मार्ग पर शोक से विह्वल होकर दौड़ते चले जाते थे।।42।। वैमानिक देवों में एक **महत्तर** जाति के देव हैं। शोक से विह्वल माता प्रजावती को इस प्रकार जाती देखकर वे महत्तर देव उनके समीप आये तथा उन्हें रोक कर इस प्रकार नम्र निवेदन करने लगे—

'हे देवी! आप जो इस तरह शोक से विह्वल होती रही हो, सो आपको कदापि शोभा नहीं देता। श्रीजिनेन्द्र भगवान तीनों लोक के स्वामी हैं। समस्त हित-अहित के जानकार हैं। क्या आप उनके चरित्र को बिल्कुल नहीं समझती हो।।43।। मृग जिस प्रकार पाश के अन्दर फँसकर बँध जाता है, उसी प्रकार सिंह पाश के अन्दर जकड़कर नहीं रह सकता। हे माता! आपके पुत्र

श्रीजिनेन्द्र भगवान वीतराग हैं–समस्त संसार की सम्पत्ति से उनका राग छूट चुका है तथा मुमुक्षु हैं–मोक्ष प्राप्ति के लिए पूरी अभिलाषा चित्त में ठान ली है; इसलिए भोगों की रमणीयता देखकर जिस प्रकार मूर्ख मनुष्य उनमें उलझ जाता है एवं उन्हें रात्रि-दिन भोगता है, उसी प्रकार वे अब नहीं भोग सकते। उनके कार्य पर किसी प्रकार का शोक करना वृथा है।।44।। जब महत्तर जाति के देवों ने इस प्रकार मधुर वचनों में माता प्रजावती को समझाया, तो उनकी समझ में आ गया एवं वह राजमाता अपने बन्धुओं के साथ बड़े कष्ट से राजमहल की ओर लौट गईं।।45।।

श्रीजिनेन्द्र भगवान ने जिस वन में जिन दीक्षा धारण की थी, उस वन का नाम श्वेतवन था। श्वेतवन का उद्यान उस समय बड़ा ही मनोहर था एवं जगह-जगह भाँति-भाँति के पुष्प एवं फल उसकी शोभा बढ़ाते थे। देवों ने वहाँ पर पहले ही एक शिला का निर्माण कर रखा था। वह शिला अत्यन्त शुद्ध थी, मणिमयी मंडल से अत्यन्त शोभायमान थी। उसके पसवाड़ों में कलश, झाड़ी आदि मांगलिक द्रव्य विद्यमान थे, वह स्फटिकमणि की बनी थी तथा गोलाकार थी। शिला के समीप आते ही जिस पालकी को देवगण लाए थे, श्रीजिनेन्द्र भगवान उससे उतर पड़े। उसी समय श्रीजिनेन्द्र भगवान ने क्षेत्र 1, वास्तु 2, हिरण्य 3, सुवर्ण 4, धन 5, धान्य 6, दासी 7, दास 8, कुप्य, 9, भांड 10–इस प्रकार दस प्रकार का बाह्य परिग्रह एवं मिथ्यात्व 1, स्त्रीवेद 2, पुरुषवेद 3, नपुंसकवेद 4, हास्य 5, रति 6, अरति 7, शोक 8, भय 9, जुगुप्सा 10, क्रोध 11, मान 12, माया 13 एवं लोभ 14–इस प्रकार यह चौदह प्रकार का अंतरंग परिग्रह–कुल योग चौबीस प्रकार के बाह्य एवं आभ्यन्तर परिग्रहों का मन-वचन एवं काय की विशुद्धता से सर्वथा त्यागकर दिया। वे श्रीमल्लिनाथ भगवान उसी समय पूर्व दिशा की ओर मुख कर बैठ गए। आठों कर्मों के सम्बन्ध से रहित भगवान ने सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार किया एवं पल्यंक आसन (पलोती मार का पाँच मुष्टियों से शीघ्र ही केश लोंच कर फेंक दिये।।46-49।। उन श्रीमल्लिनाथ भगवान ने अत्यन्त शुभ अगहन सुदी एकादशी के दिन जबकि अत्यन्त कल्याणकारी **अश्विनी नाम का नक्षत्र** था ''**नमः सिद्धेभ्यः,** सिद्ध भगवान को नमस्कार हो''–ऐसा उच्चारण किया एवं सिद्धों की साक्षीपूर्वक मोक्षलक्ष्मी की प्राप्ति की अभिलाषा से उन्होंने अट्ठाईस प्रकार के मूलगुणों को धारण किया एवं सायंकाल के समय वीतरागी, मोक्षाभिलाषी एवं महादक्ष तीन सौ राजाओं* के साथ शीघ्र ही मोक्षरूपी लक्ष्मी की सखी स्वरूप दिगम्बर जैन दीक्षा धारण कर ली। उन श्री जिनेन्द्र भगवान ने दो उपवासों का नियम लिया। मन, वचन, काय की क्रियारूप योग तथा संकल्पों का निरोध किया। वास्तविक आत्मस्वरूप की प्राप्ति के लिए समस्त सावद्य योगों का परिहार कर दिया एवं परमात्मा के स्वरूप में उन्होंने ध्यान लगाया।।50-53।। तीर्थंकर ने जो केश उखाड़ कर फेंके थे, इन्द्र ने उन्हें बड़ी भक्ति एवं आदर से रत्नत्रयी पिटारी में रखा, अतिशय उत्तम वस्त्र से ढंक लिया एवं बड़े ठाट-बाट के साथ क्षीरोदधि समुद्र के जल में जाकर क्षेपण कर दिया।।54।। जिनके मुख–मस्तक नम्रीभूत हैं एवं भगवान के गुणों पर जिनका पूरा-पूरा अनुराग है, ऐसे वे इन्द्र

उस समय के अनुकूल उत्तमोत्तम वाक्यों से तीर्थंकर की इस प्रकार भक्तिपूर्वक स्तुति करने लगे–

हे देव! आप तीनों लोक के स्वामी हो। जो योगी लोग बड़े-बड़े लोगों के भी गुरु हैं, उन पूज्य योगियों के भी आप गुरु हैं। समीचीन धर्म के सब प्रकार जानकार हैं। जिनके पूजन करने से सैकड़ों भव्य जीव तर जाते हैं–संसार से छूट कर मोक्ष लक्ष्मी की प्राप्ति कर लेते हैं, उन पवित्र तीर्थों के आप प्रवर्तक हैं एवं समस्त जीवों पर कृपा करने वोले कृपानाथ आप हैं।।55।। हे भगवान! अंतरंग एवं बाह्य मैल के दूर हो जाने पर जिस प्रकार चिन्तामणि रत्न चमचमा उठते हैं, उसी प्रकार अंतरंग एवं बाह्य मल के नाश हो जाने से आज आपके निर्मल एवं अपरिमित गुण चमचमा रहे हैं।।56।। प्रभो! यद्यपि आप स्वर्गों के सुखों में सर्वथा अभिलाषारहित हैं; परन्तु अनन्त कल्याण स्वरूप मोक्ष के सुखों में आप पूरी-पूरी अभिलाषा रखने वाले हैं; बाह्य आभ्यन्तर समस्त प्रकार के परिग्रह से रहित हैं; परन्तु अचिंत्यधन के आप स्वामी हैं। संसार की समस्त स्त्रियों में यद्यपि आप अभिलाषा रहित हैं तथापि मोक्षरूपी स्त्री के साथ संगम करने के लिए आपकी पूरी-पूरी इच्छा हैं। हे देव! यद्यपि आपने यहाँ की राज्य विभूति का सर्वथा त्याग कर दिया है; परन्तु तीन लोक के राज्य के प्राप्त करने में आपकी लोलुपता पूरी है। आपने दो उपवासों का नियम ले रखा है; इसलिए यद्यपि आप उपवासयुक्त हैं तथापित निरन्तर समीचीन ध्यानरूपी अमृत का आप पान करते रहते हैं। यद्यपि सब बातों में आप धीर-वीर हैं; परन्तु कर्मों के बन्ध करने में कातर–डरने वाले हैं अर्थात् यह आप को सदा भय लगा रहता है कि कहीं मेरे कर्मों का बंध नहीं हो जाय, इसलिए उनके बंध नहीं होने के लिए आप पूरी-पूरी चेष्टा रखते हैं। उस समय कर्मों के बाँधने में आपको धीरता-वीरता एक ओर किनारा कर जाती है एवं कर्मों के बंध से चित्त उथल-पुथल हो जाता है।।56-60।। हे भगवान! आप राग-द्वेष आदि के अन्दर वीतराग हैं–उन्हें अपनाना नहीं चाहते; परन्तु मोक्ष को सिद्ध करने में अत्यन्त रागी हैं–सदा मोक्ष की प्राप्ति के कारणों की आप चेष्टा करते रहते हैं; यद्यपि शत्रु तथा मित्रों को समान मानने के कारण आप क्षमावान हैं तथापि कर्मरूपी बैरियों को आप अपने पास तक नहीं फटकने देना चाहते, सदा उनका नाश करने के लिए प्रवृत्त रहते हैं।।61।। हे भगवान! यद्यपि संसार की तुच्छ लक्ष्मी में आपका किसी प्रकार का लाभ नहीं; इसलिए उसे त्यागकर आपने पवित्र जिन-दीक्षा धारण की है तथापि तपरूपी लक्ष्मी के लिए आप बड़े लोभी हैं–एक क्षण के लिए भी तपरूपी लक्ष्मी से विमुख होना नहीं चाहते। आप अपने शरीर आदि में सर्वथा ममत्व रहित निर्मोही हैं; परन्तु मोक्ष रूपी स्त्री पर आपका पूरा-पूरा स्नेह है। उसकी प्राप्ति के लिए आप कोई भी बात उठा रखने वाले नहीं हैं।।62।। हे स्वामी! कुमारावस्था में कामदेव का जीतना अत्यन्त कठिन है; परन्तु आपने कुमारावस्था में ही मोह तथा इन्द्रियरूपी बैरियों के साथ कामदेव रूपी बलवान शत्रु को देखते-देखते नष्ट कर डाला। आपके समान अन्य कोई महापुरुष नहीं है, अतएव हे देव! आप उत्तम कोटि के बाल ब्रह्मचारी हैं; इसलिए आपको नमस्कार है। आप मोह के विकारों से रहित निर्मोही हैं, अत्यन्त शान्त हैं एवं

तपरूपी लक्ष्मी से शोभित हैं; इसलिए आपको नमस्कार है।।63-64।। आप दिव्य रूप हैं; इसलिए आपको नमस्कार है। मोक्ष सुख प्राप्त करने के लिए आपकी पूरी इच्छा है, इसलिए आपको नमस्कार है। आप हितात्मा हैं—दूसरे जीवों का एवं अपना भी हित करने वाले हैं; इसलिए आपको नमस्कार है एवं आप समस्त गुणों के समुद्र हैं; इसलिए आप नमस्कार करने योग्य हैं।।65।। हे देव! यह विनयपूर्वक प्रार्थना है कि यह जो हमने आपकी भक्ति एवं स्तुति की है, उसका फल हम यही चाहते हैं कि बाल्यावस्था में भी संयम की प्राप्ति के लिए जिस प्रकार आपके अन्दर अचिंत्य शक्ति विद्यमान है, वह शक्ति आपकी कृपा से हमें भी प्राप्त हो।।66।। इस प्रकार भक्तिपूर्वक भगवान श्रीमल्लिनाथ की स्तुति कर देवेन्द्रों ने बारम्बार उन्हें नमस्कार किया एवं उनकी महिमा की प्रशंसा करते हुए वे लोग अत्यन्त प्रसन्नता के साथ अपने-अपने स्थान लौट गये।।67।।

दीक्षा के समय परिणामों की इतनी उज्ज्वलता रहती है कि उस समय सातवें गुणस्थान के परिणाम हो जाते हैं, सातवें गुणस्थान का काल अन्तर्मुहूर्तमात्र होने से पीछे वे छठे गुणस्थान में आते-जाते रहते हैं। समस्त बाह्य आभ्यन्तर परिग्रहों का त्याग कर जिस समय श्रीमल्लिनाथ भगवान ध्यान के अन्दर निश्चल हुए थे, उस समय उस उत्कट ध्यान की सामर्थ्य से उनके 'मनःपर्ययज्ञान' नाम का चौथा ज्ञानरूपी सूर्य प्रकट हो गया था एवं उस समय वे मतिज्ञान, श्रुतिज्ञान, अवधिज्ञान एवं मनःपर्ययज्ञान—इस प्रकार चार ज्ञानों के धारक बन गए थे। जो दिन उनके पारणा का था, उस दिन उन्होंने संयम करते-करते ही यह विचारा कि शरीर की स्थिति के लिए आहार लेना भी सुनिश्चित मार्ग है; अर्थात् संयम का साधक है; इसलिए आहार का लेना उन्होंने निश्चित कर लिया। वे जिनेन्द्र भगवान, हृदय में संसार एवं भोगों से वैराग्य की भावना का चिन्तवन करते-करते जूरा प्रमाण जमीन को देखते-देखते आहार के लिए चल दिए एवं दानियों को सन्तोष प्रदान करने के लिए मिथिलापुरी में प्रवेश कर गए।।68-69।।

तब **मिथिलापुरी** में **सुवर्ण के समान महामनोज्ञ कान्ति का धारक एक नन्दिषेण नाम का राजा रहता** था। आहार की अभिलाषा से घूमते हुए श्री जिनेन्द्र भगवान को देखकर एवं हृदय में यह विचार कर कि जिस प्रकार खजाने का मिलना अत्यन्त दुर्लभ है—सामान्य भाग्यवान को वह नहीं प्राप्त हो सकता, उसी प्रकार उत्तम पात्र (मुनि) का मिलना भी कठिन है, तब महान तपस्वी तीर्थंकर का मिलना तो अत्यन्त कठिन ही है। हर एक समय हर एक को उनका मिलना सम्भव नहीं हो सकता, तीर्थंकर को देखकर उसे बड़ा हर्ष हुआ। दोनों हाथ जोड़कर उनके चरण कमलों को भक्तिपूर्वक नमस्कार किया एवं 'हे प्रभो! तिष्ठ-तिष्ठ' ऐसा कहकर उसी क्षण उन्हें ठहराया।।70-71।। श्रद्धा, तुष्टि, भक्ति आदि दाता के सात गुणों से भूषित एवं पुण्य के कारण पड़िगाहन उच्चासन प्रदान करना, प्रक्षाल, पूजा आदि नवधा भक्ति से विभूषित राजा नन्दिषेण ने उत्तम पात्र तीर्थंकर के लिए क्षीरान्न (खीर) का भक्तिपूर्वक आहार दिया; जो दोषरहित मधुर था,

मनोहर था, तृप्ति का करने वाला था, उत्कृष्ट था, प्रासुक था एवं अपने-पराये का कल्याण करने वाला था।।72-73।। उत्तम पात्र तीर्थंकर को दान देने से उत्पन्न हुए पुण्य का उपार्जन कर राजा नन्दिषेण ने स्वयं तीर्थंकर को आहार दान देने से अपने गृहस्थाश्रम को सफल समझा एवं अपना धन तथा जीवन भी उसने सफल एवं उत्कृष्ट समझा।।74।।

वे तीर्थंकर सदा संयम एवं वैराग्य की भावना का चिन्तवन करते थे, ध्यान एवं अध्ययन में सदा प्रवृत्त रहते थे तथा जंगल, खण्डहर आदि निर्जन स्थानों में सदा उनका निवास रहता था।।75।। पराक्रम के साथ निर्ग्रन्थ होकर वे पृथ्वी पर विहार करते थे। इस प्रकार छः दिन तक विहार कर तीर्थंकर ने जहाँ पर दीक्षा धारण की थी, उसी **दीक्षावन श्वेतवन** में वे आ गए।।76।। श्वेतवन में आकर **अशोक वृक्ष** के नीचे उन्होंने अच्छी तरह ध्यान का अवलम्बन किया। सम्यक्त्व, ज्ञान, वीर्य आदि जो सिद्धों के आठ गुण कहे गए हैं, उन्हें प्राप्त करने की अभिलाषा से सबसे पहले उन्होंने सिद्धों के आठ गुणों का ध्यान करना प्रारम्भ कर दिया।।77।। उसके बाद परम जितेन्द्रिय एवं प्रमादरहित वे तीर्थंकर चित्त को स्थिर कर उत्कृष्ट ध्यान, धर्मध्यान के आज्ञाविचय* आदि चारों पायों का स्फुट रूप से ध्यान करने लगे।।78।। स्थिर चित्त के धारक वीतराग तीर्थंकर ने उस धर्म्यध्यान के बल से बहुत से कर्मों को शिथिल कर डाला एवं बहुत से कर्मों का क्षय भी कर डाला एवं उस ध्यान के सम्बन्ध से मोक्षरूपी महल में जाने के लिए सीधी सीढ़ी स्वरूप क्षपकश्रेणी में पदार्पण कर दिया एवं **'पृथक्त्ववितर्क'**[2] नामक प्रथम शुक्लध्यान के द्वारा मोहनीय कर्म की इक्कीस प्रकृतियों का सर्वथा क्षय कर उसे उखाड़ कर फेंक दिया।।79-80।। महायुद्ध में शत्रु को मार कर तीक्ष्ण खड्ग का धारक महाभट्ट जिस प्रकार शोभित होता है, उसी प्रकार चारित्ररूपी संग्राम में ध्यानरूपी तीक्ष्ण खड्ग के धारक महातपस्वी तीर्थंकर भी मोहरूपी मल्ल को मार कर महाभट्ट के समान अत्यन्त शोभित होने लगे।।81।। **पौष वदी द्वितीया** के दिन **पूर्वाह्न के** समय जब कि **पुनर्वसु नाम** के शुभ नक्षत्र का उदय था, भगवान श्री जिनेन्द्र ने बारहवें गुणस्थान में पदार्पण किया। बारहवें गुणस्थान का काल अंतर्मुहूर्त था एवं वहाँ पर **'एकत्वतिर्क विचार'** नाम का दूसरा शुक्लध्यान प्रगट होता है; इसलिए बारहवें गुणस्थान में **'एकत्ववितर्कविचार'** नामक दूसरे शुक्लध्यान की कृपा से मोहनीय कर्म के सिवाय शेष कर्म–अर्थात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण एवं अन्तराय–इन तीन घातिया कर्मों का भी सर्वथा नाश कर दिया। चारों घातियों कर्मों के सर्वथा नाश से उन तीन जगत् के स्वामी तीर्थंकर के समस्त लोक एवं अलोक के चर-अचर पदार्थों को साक्षात् प्रकाशित करने वाला केवल ज्ञान प्रगट हो गया, जो कि अपने स्वरूप से समस्त जगत् को आश्चर्य करने वाला था एवं जिस क्षण में उत्पन्न हुआ था, उसी क्षण में मुक्ति के लिए दर्पण स्वरूप था; अर्थात् जिस प्रकार दर्पण में मुक्ति का स्वरूप साक्षात् प्रतिभाषित होता है, उसी तरह वस्तु का स्वरूप साक्षात् उसके अन्दर प्रतिभाषित होता था।।82-84।। तीर्थंकर को केवलज्ञान की प्राप्ति होते ही उसके माहात्म्य से स्वर्गों के अन्दर घण्टे

अपने-आप बजने लगे। ज्योतिषी देवों के भवनों में शंख ध्वनि होने लगी, भवनवासी देवों के भवनों के अन्दर शंखनाद होने लगा एवं व्यन्तरनिकाय के देवों के भवनों में भेरियों का उन्नत शब्द होने लगा, जिससे भगवान के केवलज्ञान की सूचना हो गई। उस समय कल्पवृक्षों से नवीन पुष्पों की वृष्टि होने लगी। शीतल मंद सुगंध पवन बहने लगी। समस्त दिशायें निर्मल हो गईं एवं वैमानिक देवों के आसन चल-विचल हो उठे।।85-87।। इस प्रकार के अनेक आश्चर्यों को देख कर इन्द्रों ने यह निश्चय कर लिया कि तीर्थंकर को **'केवलज्ञान'** प्राप्त हो गया है। वे शीघ्र ही अपने-अपने आसनों से उठे एवं तीन जगत् के गुरु तीर्थंकर को भक्तिपूर्वक नमस्कार किया।।88।। सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र ने श्री मल्लिनाथ भगवान का केवलज्ञान महोत्सव करने के लिए तैयारियाँ की एवं जिस प्रकार सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र ने तैयारियाँ की, उसी प्रकार जितने भी इन्द्र श्रीमल्लिनाथ भगवान के केवलज्ञान महोत्सव में आने वाले थे, सबों ने तैयारियाँ करनी प्रारम्भ कर दीं।।89।। भगवान के केवलज्ञान महोत्सव में जाते समय **'वलाहक'** नाम के देव ने **'कामक'** नाम के विमान की रचना की। यह विमान **एक लाख योजन चौड़ा** था एवं महामनोज्ञ मोतियों की मालाओं से शोभायमान था।।90।। अत्यन्त **चतुर 'नागदत्त'** नाम के **आभियोग्य** जाति के देव ने उस समय ऐरावत गजराज की रचना की, जो कि **लाख योजन प्रमाण** अत्यन्त सुडौल शरीर का धारक था, बजते हुए घण्टों के शब्द से अत्यन्त शोभायमान था, छोटी-छोटी घण्टियों एवं चमरों से अलंकृत था, विक्रिया से इच्छापूर्वक रचा गया था, बड़े ठाट-बाट से सजाया गया था, महामनोहर तथा श्वेतवर्ण का था।91-92।। इस ऐरावत गजराज के मुख बत्तीस थे, हर एक मुख में आठ-आठ दाँत थे, हर एक दाँत पर एक-एक सरोवर विद्यमान था, हर एक सरोवर में एक-एक कमलिनी थी। (कमलों की बेल थी) प्रत्येक कमलिनी में बत्तीस-बत्तीस कमल थे, हर एक कमल के बत्तीस-बत्तीस पत्ते थे, प्रत्येक पत्ते में नाचने वाली बत्तीस-बत्तीस देवियाँ थीं, जो के पूर्ण श्रृंगार से शोभायमान थीं तथा लीलापूर्वक बड़े हावभाव के साथ नृत्य करती थीं।।93-95।। इस प्रकार के उत्तम वर्णनों के धारक उस ऐरावत गजराज पर सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र सवार हो गया एवं श्रीजिनेन्द्र भगवान की पूजा के लिए चल दिया।।96।। श्रीजिनेन्द्र भगवान की पूजा के लिए इन्द्र को इस प्रकार तैयार देखकर सामानिक आदि देव भी अपने-अपने वाहनों पर सवार हो गए एवं अपनी विभूति के साथ चारों ओर से इन्द्र को वेष्टित कर बड़े हर्ष से खड़े हो गए।।97।। ऐशान इन्द्र को आगे कर के अन्य स्वर्गों के इन्द्र अपने-अपने वाहनों पर सवार हो गए तथा अपनी-अपनी विभूति के साथ ज्योतिषी आदि निकायों के इन्द्र भी अपने-अपने भवनों से निकल पड़े। जिस समय चारों निकायों के देवेन्द्र तीर्थंकर की पूजा के लिए निकल पड़े उस समय 'हे देव! आप जयवन्त हों, **नादें एवं विरदें'** इत्यादि अनेक कोलाहलों से तथा अनेक प्रकार के वाद्यों से समस्त दिशायें व्याप्त हो गई थीं। शरीरों पर पहने हुए भूषणों की कान्ति से समस्त आकाश जगमगा उठा था एवं उत्तमोत्तम विमान एवं वाहन आदि से सारा आकाश ढँका सरीखा जान पड़ता

था। इस प्रकार सैकड़ों महोत्सवों के साथ वे देव जिस वन में श्रीमल्लिनाथ भगवान को केवलज्ञान हुआ था, उस वन की भूमि पर आकर पहुँच गए।।99-100।। शिल्पकला में पूर्ण चातुर्य रखनेवाला कुबेर पहले ही इन्द्र की आज्ञा से वहाँ पहुँच चुका था एवं उसने बड़ी सुन्दरता के साथ समवशरण की रचना कर रखी थी। जिस समय देवेन्द्रगण भूमि पर उतरे, तब दूर से ही साक्षात तेजों के पुञ्ज स्वरूप उन्होंने तीर्थंकर का समवशरण देखा एवं बड़ा हर्ष प्रकट करने लगे।।101।। समवशरण की रचना सज्जनों की परमानन्द प्रदान करने वाली होती है, अनुपम एवं समस्त प्रकार की ऋद्धियों से व्याप्त रहती है, इसलिए सज्जन पुरुषों को आनन्दित करने के लिए उस अनुपम समस्त प्रकार की ऋद्धियों से व्याप्त समवशरण का मैं (ग्रन्थकार) संक्षेप में वर्णन करता हूँ–

जिस भूमि पर तीर्थंकर का समवशरण रचा गया था, उस भूमि का विस्तार तीन योजन प्रमाण था, वह इन्द्रनील मणि के समान कान्ति की धारक एवं गोलाकार थी।।102-103।। कान्ति से जाज्वल्यमान उस पृथ्वी का तीन योजन पर्यन्त भाग धूलीशाल (परकोट) से चारों ओर से वेष्टित था, जो वह रत्नमयी था एवं विशाल था।।104।। धूलीशाल की चारों दिशाओं में सुवर्णमयी स्तम्भों के अग्रभाग में बहुत मनोहर तोरण, मीनाकारी तथा रत्नों से अलंकृत मालाएँ लटक रही थीं, जिनसे उन स्तम्भों की अद्वितीय शोभा देखते ही बनती थी।।105।। कुछ दूरी पर उस भूमि के भीतर जाकर गलियों के मध्य भाग में मानस्तम्भ विद्यमान थे, जो कि सुवर्णमयी थे। निचले भाग एवं बीच के भाग में तीर्थंकर की प्रतिमाओं के रहने के कारण पूज्य एवं पवित्र थे, ध्वजा एवं छत्र आदि से शोभायमान थे, जिनके अन्दर चार-चार विशाल गोपुर (सदर दरवाजे) विद्यमान थे, ऐसे तीन प्रकारों से वेष्टित थे एवं महामनोहर जान पड़ते थे।।106-107।। स्तम्भों तक की भूमि भागों पर प्रत्येक दिशा में चार वापियाँ थीं, जो कि मणिमयी सीढ़ियों से शोभायमान थीं एवं नन्दा, नन्दोत्तरा आदि उनके शुभ नाम थे।।108।। मानस्तम्भों की जगह से थोड़ी दूर जाकर मानस्तम्भों की भूमि को चारों ओर से घेर कर रखने वाली एक विस्तीर्ण खाई थी, जो कि अत्यन्त निर्मल जल से भरी हुई थी एवं पवन वेग से उत्पन्न होने वाली चंचल तरंगों से व्याप्त थी। खाई के मध्यभाग की भूमि को घेर कर रखने वाला एक आम्रवन था, जो कि महामनोहर क्रीड़ा पर्वत एवं लता मण्डपों से युक्त था एवं समस्त ऋतुओं में खिलने वाले महामनोहर पुष्पों से शोभायमान था।।109-110।। आम्रवन से कुछ दूर पर सबसे पहला विशाल प्रकार था, जो कि मुक्तामाला आदि से भूषित था, अत्यन्त उन्नत था तथा सुवर्णमयी था।।111।। इस प्रकार की चारों दिशाओं में चार सदर दरवाजे थे, जो कि चाँदी के बने हुए थे। तीन-तीन खण्डों के थे एवं विशाल पर्वत के शिखर सरीखे जान पड़ते थे।।112।। हर एक सदर दरवाजे के अन्दर झाड़ी, कलश आदि मांगलिक द्रव्य एक सौ आठ-आठ शोभायमान थे।।113।। हर एक दरवाजे पर सौ-सौ तोरण लटक रहे थे, जो कि अत्यन्त शोभायमान जान पड़ते थे। उन द्वारों के भीतर रत्नमयी आभरणों से युक्त नौ निधियाँ जगमगा रही थीं।।114।। गोपुरों के भीतर जाकर एक विशाल गली थी तथा उस गली

के दोनों पसवाड़ों में दो नाट्यशालायें थी, जो कि रत्नमयी स्तम्भों से शोभायमान थीं तथा तिखनी बनी हुई थीं।।115।। उन महावीथियों की दोनों दिशाओं में दो-दो धूपघट विद्यमान थे तथा उनसे आगे गलियों में चार मनोहर वन थे, जो कि सब ऋतुओं में होने वाले फल तथा पुष्पों से शोभायमान थे। लता, गृह, वापी आदि से महामनोहर जान पड़ते थे एवं अशोकवन 1, सप्तपर्णवन 2, चम्पकवन 3 एवं आम्रवन 4—ये उन चार मनोहर वनों के नाम थे।।116-117।। अशोक आदि चारों वनों में से अशोकवन के अन्दर बहुतायत से अशोकवृक्ष थे। सप्तपर्णवन में सप्तपर्ण जाति के वृक्ष थे। चम्पकवन में चम्पा के वृक्ष एवं आम्रवन में महामनोहर आम्र वृक्ष विद्यमान थे एवं ये समस्त वृक्ष, सुवर्णमयी तीन कटनीवाले पीठों (थामरों) से शोभायमान थे।।118।। माला 1, मगर 2, मयूर 3, कमल 4, हस 5, वीन-वरुण 6, सिंह 7, बैल 8 गज 9, एवं चक्र 10—इस प्रकार उत्कृष्ट ध्वजायें दस प्रकार की मानी जाती हैं।119।। मोहरूपी मल्ल के जीतने से उन्नत पालि ध्वजायें (प्रधान ध्वजायें) एक-एक दिशा में एक-एक सौ आठ थीं तथा सामान्य रूप से एक-एक दिशा में समस्त ध्वजायें एक हजार अस्सी-अस्सी थीं तथा मिल कर चार हजार तीन सौ बीस (4320) थी।।120-121।।

चारों वनों के भीतर जाकर पुनः एक दूसरा प्राकार था, जो कि पहले प्राकार के समान ही चार सदर दरवाजों से युक्त था। जिस प्रकार पहले प्रकार में तोरण आदि की विभूति बतलाई गई हैं, उसी प्रकार की विभूति से युक्त था, चाँदी के वर्ण का और विशाल था। इस प्राकार के भी दोनों पसवाड़ों में पहले प्रकार के पसवाड़ों के समान दो नाट्यशालायें थीं तथा धूप से जायमान धुआँ से समस्त दिशाओं को व्याप्त करने वाले धूप घड़े विद्यमान थे। धूपघड़ों के आगे दूसरी वीथी में कल्पवृक्षों का एक विशाल वन था, जो कि फैली हुई उग्र रत्नों की प्रभा से समस्त अन्धकार का नाश करने वाला था।122-124।। उस कल्पवृक्षों के वन के अन्दर अशोक आदि चार चैत्यवृक्ष थे, जो कि अपनी महामनोहर कान्ति से अत्यन्त दैदीप्यमान थे। उनके नीचे के भाग में श्रीजिनेन्द्र भगवान की प्रतिमायें थीं तथा वे वृक्षमय सिंहासन तथा छत्रों से युक्त होने के कारण अत्यन्त शोभायमान थे।।125।। उन अशोक आदि वृक्षों से परिपूर्ण वनों के पर्यन्त भाग में एक वनवेदी थी, जो कि कलश, झाड़ी आदि मांगलिक द्रव्यों से परिपूर्ण परमोत्तम चार सदर दरवाजों से शोभायमान थी।।126।। उससे आगे की भूमि मे ंनाना प्रकार के रत्नमयी चबूतरों के धारक स्तम्भों के अग्रभाग में नाना प्रकार की ध्वजायें फहरा रही थीं, जो कि अत्यन्त शुभ थीं तथा बहुत ऊँची-ऊँची थीं, जिनसे कि वह भूमि अत्यन्त शोभायमान जान पड़ती थी।।127।। समोशरण के अन्दर रहने वाले प्राकार, चैत्यवृक्ष, ध्वजायें, वन-वेदियाँ स्तूप, तोरणों सं अलंकृत स्तम्भ तथा मानस्तम्भ—इन सबकी ऊँचाई तीर्थंकर की ऊँचाई से बारह गुनी अधिक होती है, अर्थात् जिस तीर्थंकरों का समवशरण होगा, उस तीर्थंकर के शरीर की जो ऊँचाई होगी, उस ऊँचाई से समवशरण के अन्दर रहने वाले परकोट आदि की ऊँचाई नियम से बारह गुनी होगी तथा जितनी ऊँचाई होती है, उसी के अनुकूल

उनकी चौड़ाई होती है। यह समवशरण उन्नीसवें तीर्थंकर भगवान श्रीमल्लिनाथ का था, इसलिए उनके शरीर की जितनी ऊँचाई थी, उससे बारह गुनी इस समवशरण के प्राकार आदि की ऊँचाई थी तथा ऊँचाई के अनुकूल चौड़ाई थी।।129।। क्रीड़ा-पर्वत, लता-गृह तथा वनों की ऊँचाई आगम के जानकार पुरुषों ने आगम में एक-सी ही बतलाई है।।130।। पुराणों के जानकार समस्त आगम के पारगामियों ने पर्वतों की चौड़ाई अपनी-अपनी ऊँचाई की अपेक्षा आठ-आठ गुणी मानी है। स्तूपों की जो ऊँचाई कही गई है, उससे कुछ अधिक उनकी चौड़ाई मानी है तथा वनवेदी आदि का विस्तार उनकी ऊँचाई से चौथा भाग माना है।।131-132।

वनवेदियों के भीतर की भूमि में प्रासादों की पंक्तियाँ थीं, जो कि दो खण्ड, तीन खण्ड तथा चार खण्ड वाली थीं, महामनोहर ऊँची-ऊँची तथा रत्नमयी थीं।।133।। गलियों के मध्य भाग में नौ स्तूप थे, जो कि पद्मराग मणिमय थे तथा सिद्ध भगवान की प्रतिमाओं से अलंकृत थे।।134।। स्तूपों के मध्य भागों में रत्नमयी तोरण तथा मालिका थीं, जिन्होंने कि अपनी कान्ति से समस्त आकाश को व्याप्त कर रखा था, अतएव जो इन्द्र धनुषमयी सरीखी जान पड़ती थीं।।135।। स्तूपों की भूमि के बाद एक स्फटिकमयी परकोटा था, जो कि शुद्ध स्फटिक रत्न का बना हुआ था तथा अपनी प्रभा से समस्त दिशाओं को धवल करने वाला था, अतएव जो आकाश सा बना हुआ जान पड़ता था।।136।। इस स्फटिकमयी परकोटे की भी चारों दिशाओं में पहले के समान चार सदर दरवाजे थे, जो कि अत्यन्त शोभायमान थे। वे दरवाजे पद्मराग मणियों से बने हुए थे तथा पहले प्राकारों के दरवाजों के समान ही निधियाँ, कलश तथा झाड़ी आदि मांगलिक द्रव्यों से युक्त थे।।137।। सदर दरवाजों पर गदा आदि शस्त्रों को हाथों में लिए हुए देव थे, उनमें भी पहले परकोटे के दरवाजों पर हाथों में शस्त्र लिए व्यन्तर देव खड़े थे। दूसरे परकोटे के दरवाजों पर भवनवासी देव थे तथा तीसरे परकोट के सदर दरवाजों पर वैमानिक देव हाथ में हथियार लिए द्वारपालों का कार्य कर रहे थे।।138।। समवशरण की भूमि के मध्य एवं आदि के भाग से सटी हुई परकोटों के अन्त तक सोलह भीतियाँ थीं, जो कि स्फटिक रत्नों की बनी थीं एवं विशाल गलियों के अन्तरालों में विद्यमान थीं।।139।। उन स्फटिक मणिमयी भीतों के ऊपर विशाल 'श्रीमण्डप' बना हुआ था, जो कि विस्तृत था, रत्नमयी स्तम्भों से वेष्टित था एवं निर्मल स्फटिक पाषाण का बना हुआ था; अतएव साक्षात् आकाश का बना हुआ जान पड़ता था।।140।। श्रीमण्डप से जितना क्षेत्र रुका हुआ था, उस क्षेत्र के ठीक मध्यभाग में पहली पीठिका (पीठ) थी, जो कि वैडूर्य जाति की हरी बनी थी, अत्यन्त शुभ थी एवं मांगलिक द्रव्य तथा अन्य विभूतियों से शोभायमान थी।।141।। इस पीठिका के अन्दर धर्मचक्र विद्यमान थे, जिन्हें यक्षगण अपने मस्तकों पर रखे हुए थे, वे महा दैदीप्यमान थे, हजार-हजार आराओं के धारक थे एवं सूर्य के प्रतिबिम्बों सरीखे जान पड़ते थे।।142।। उसी जगह पर सोलह सीढ़ियों के अन्तर से सोलह सोपान मार्ग (जीने) थे, जिनसे कि चारों दिशाओं में विद्यमान कोठों के अन्दर प्रवेश किया जाता था।।143।।

उस प्रथम पीठ के ऊपर दूसरा पीठ था, जो कि सुवर्णमयी था एवं आठों दिशाओं में चक्र एवं गजराज आदि के चिह्नों की धारक आठ ध्वजाओं से शोभायमान था।।144।। इस दूसरे पीठ के ऊपर तीसरा पीठ था, जो कि दैदीप्यमान मणियों का बना हुआ था, तीन कटनियों से शोभायमान था, उन्नत था एवं उसकी प्रचण्ड कान्ति से समस्त दिशायें जगमगाती थीं।।145।। इस तृतीय पीठ पर गन्धकुटी थी, जो कि अपनी उत्कट सुगन्धि से समस्त दिशाओं को सुगन्धित करने वाली थी, दिव्य सुगन्धि की धारक थी, उत्कृष्ट थी एवं भाँति-भाँति के पुष्पों के समूह से व्याप्त थी।।146।। इस गन्धकुटी के मध्य भाग में महामनोहर सिंहासन विद्यमान था, जो कि नाना प्रकार के दैदीप्यमान रत्नों की प्रभा से समस्त आकाश को व्याप्त करने वाला था, दिव्य था एवं मेरू पर्वत का शिखर सरीखा प्रतीत होता था, अतएव वह अत्यन्त शोभायमान जान पड़ता था।।147।। इसी पवित्र सिंहासन को दिव्य रूप के धारक तीन जगत् के गुरु श्रीजिनेन्द्र भगवान ने सुशोभित कर रखा था एवं वे अपने अलौकिक माहात्म्य से उसके तल भाग का स्पर्श न कर चार अंगुल प्रमाण आकाश में विराजते थे।।148।। इस दिव्य सिंहासन के चारों ओर देव आदि के बैठने के बारह कोठे थे, उनमें से पहले कोठे में मुनिगण विराजते थे, दसूरे में कल्पवासी स्त्रियाँ, तीसरे में आर्यिकाओं, चौथे में ज्योतिषी देवों की देवांगनायें, पाँचवें में व्यन्तर देवों की देवियाँ, छठे में भवनवासी देवों की देवांगनायें, सातवें में भवनवासी देव, आठवें में व्यन्तर देव, नौवें में समस्त ज्योतिषी देव, दसवें में वैमानिक देव, ग्यारहवें में मनुष्य एवं बारहवें में तिर्यञ्च बैठे थे।।149-151।। इस प्रकार श्री मल्लिनाथ को चारों ओर से घेर कर बारह कोठों में बैठने वाले अतिशय भक्ति रखने वाले जीव धर्म रूपी अमृत के पीने की इच्छा से उनके सम्मुखस्थित हो गए*।152।।

आनन्द से उत्फुल्ल हुए नेत्रों के धारक देवों ने जिस समय समवशरण के मण्डप में प्रवेश किया, उस समय श्रीजिनेन्द्र भगवान को देखा। वे भगवान उस समय बारह कोठों में बैठने वाले प्राणी जनों से शोभायमान थे, अनेक प्रकार की विभूतियों से व्याप्त थे। अशोकवृक्ष का होना 1, रत्नमयी सिंहासन 2, भगवान के सिर पर तीन छत्रों का फिरना 3, भगवान के पीछे भामण्डल का होना 4, भगवान के मुख से निरक्षरी दिव्य-ध्वनि का खिरना 5, देवों के द्वारा पुष्पवृष्टि का होना 6, यक्ष देवों के द्वारा चौंसठ चमरों का ढुरना 7 एवं दुन्दुभी वाद्यों का बजना 8—इस प्रकार आठ प्रातिहार्यों से शोभायमान थे। क्षायिकज्ञान 1, क्षायिकदर्शन 2, क्षायिकदान 3, क्षायिकलाभ 4, क्षायिकभोग 5 क्षायिक उपभोग 6, क्षायिकवीर्य 7, क्षायिकसम्यक्त्व 8 एवं क्षायिकचारित्र 9—इस प्रकार नौ केवललब्धियों से भूषित थे। समस्त प्रकार की वांछाओं को पूरण करने वाले थे, संसार के दुःखों से तारने वाले तीर्थ के स्वामी थे, सम्यक्त्व आदि गुणों के समुद्र थे, उपमातीत थे एवं दिव्य आसन पर विराजमान थे।।153।। उसके बाद तीनों लोक के गुरु, गुणों के समुद्र समस्त प्रकार की ऋद्धियों एवं धर्म के स्थान श्री जिनेन्द्र भगवान की समस्त इन्द्रों ने भक्तिपूर्वक अपने सहचारी देव एवं देवांगनाओं के साथ तीन प्रदक्षिणा दीं एवं उनके गुणों में अनुरक्त होकर सबों

ने अपने-अपने हाथ जोड़कर चूड़ामणियों से जगमगाने वाले अपने मस्तकों से लगाकर भक्तिपूर्वक नमस्कार किया।।154।। इस प्रकार समस्त अनुपम गुणों के समुद्र, समस्त तत्त्वों के प्रकाशित करने वाले, समस्त दोषों से रहित, ज्ञानावरण आदि घातिया कर्मरूपी बैरियों के नाशक, मोक्षाभिलाषी तीनों लोक के इन्द्रों से सेवित एवं वन्दित वे भगवान अपने समान असाधारण ऐश्वर्य हमें भी प्रदान करें।।1155।।

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति कृत संस्कृत भाषा में श्री मल्लिनाथ चरित्र की पं. गजाधरलाल जी न्यायतीर्थ विरचित हिन्दी वचनिका में श्री मल्लिनाथ भगवान का दीक्षा कल्याणक और केवलज्ञान कल्याणक का वर्णन करने वाला छठा परिच्छेद समाप्त हुआ।।6।।

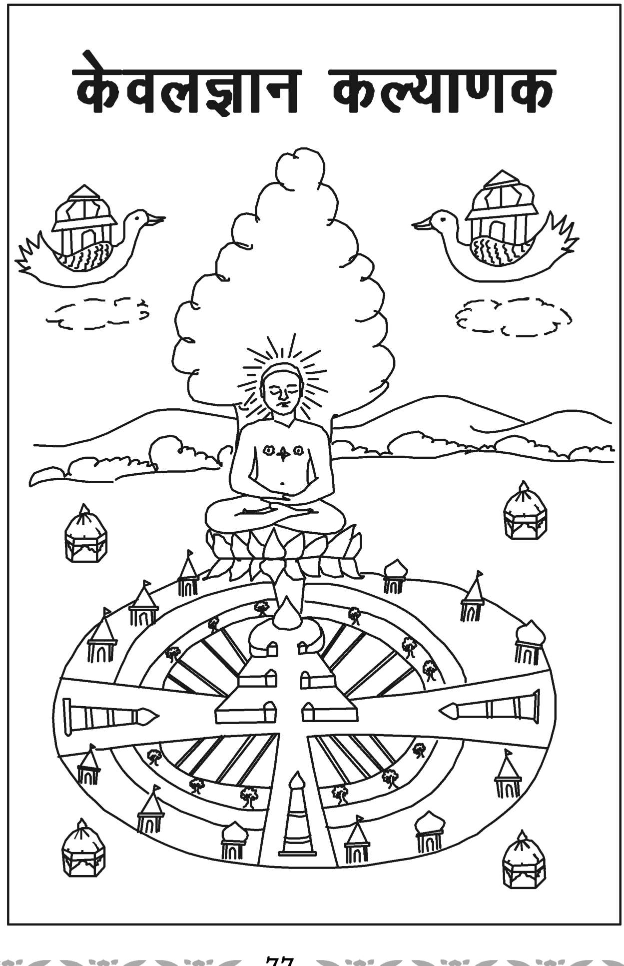

सप्तम परिच्छेद

धर्मोपदेशनोद्युत्तं श्रीमंतं त्रिजगद्‌गुरुं।
स्थितं सदिसि भव्यानां स्तुवे देवं गुणार्णवं।।

भव्यों की सभा (समवशरण) के अन्दर विराजमान, समीचीन धर्म के उपदेश देने के लिए उद्यत, बाह्य अन्तरंग दोनों प्रकार की लक्ष्मी के स्वामी, तीन जगत् के गुरु एवं अगणित गुणों के समुद्र देवाधिदेव श्रीमल्लिनाथ भगवान को मैं (ग्रन्थकार) मस्तक झुकाकर भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।।1।। इन्द्रगण जिस समय नमस्कार कर उठे, उस समय उन्होंने देवों के साथ पवित्र स्वच्छ जल, दिव्य चन्दन, मुक्ताफलों के अक्षत, कल्पवृक्षों के पुष्पों की मालायें, अमृत के पिंडस्वरूप नैवेद्य, स्वर्गलोक में प्रयुक्त रत्नमयी दीपक, धूप, उत्तम फल, पुष्पों की अंजली, उत्कृष्ट गीत एवं नृत्य रूप दिव्य सामग्री से श्रीजिनेन्द्र भगवान के चरणकमलों की भक्तिभाव से सानन्द पूजा की।।2-4।। सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र की इन्द्राणी ने श्रीजिनेन्द्र भगवान के सामने नाना प्रकार के वर्णवाले अत्यन्त शोभा से अलंकृत रत्नमयी चूर्णों से दैदीप्यमान बलि (माढना) माड़ा।।5।। जिस समय यह कार्य समाप्त हो चुका, उस समय भक्ति के भार से वशीभूत एवं प्रसन्न चित्त देवेन्द्रों ने श्री जिनेन्द्र भगवान के असाधारण गुणों की इस प्रकार स्तुति करनी प्रारम्भ कर दी–

तीव्र पुण्य के उदय से आपके चरणकमलों का आज हमें दर्शन हुआ है, इसलिए आज हम धन्य हैं एवं हमारा जीवन सफल है।।5-6।। हे देव! आप तीन जगत् के नाथ हो। गुरुओं के महागुरु हो। तीन जगत् के स्वामियों के अर्थात् देवेन्द्र, नरेन्द्र एवं नागेन्द्रों के आप स्वामी हो एवं जिन योगियों को बड़े-बड़े पदवीधारी भी पूजते हैं, वे पूज्य योगी भी आपकी सेवा करते हैं। हे भगवान! ज्ञानियों में आप सर्वज्ञ हैं, प्रचण्ड तप तपने वाले तपस्वियों में महा तपस्वी हैं, योगियों के अन्दर महायोगी एवं कर्मों के जीतने वाले **'जिनों'** में आप उत्कृष्ट 'जिन' हैं।7-9।। हे भगवान! आपका चित्त संसार के दुःखों से समस्त जगत् का उद्धार करने का है, आपकी संसार के किसी भी पदार्थ में इच्छा नहीं, इसलिए आप निरीह हैं, समस्त जगत का हित करने वाले हैं, बहिरंग एवं अंतरंग दोनों प्रकार की लक्ष्मी से शोभायमान हैं एवं संसार में समस्त निर्ग्रन्थों के आप राजा हैं।।10।। हे भगवान! यह बड़े अचरज की बाज है कि इन्द्राणी तुल्य आपके चरणकमलों की सेवा करती है, तब भी आप ब्रह्मचारी हैं, यद्यपि आप समस्त संसार के पदार्थों के ज्ञाता हैं, तथापि इन्द्रियों के ज्ञान से आप दूर हैं अर्थात् इन्द्रियजन्य ज्ञान आपके अन्दर नहीं है।।11।। हे भगवान! जिस प्रकार सूर्य के द्वारा अन्धकार का नाश होता है, उसी प्रकार आपके दर्शनरूपी किरणों से हमारा अज्ञानरूपी अन्धकार एवं पापों का क्षय हो गया।।12।। हे भगवान! आप गुणों के समुद्र हैं, इसलिए स्वर्ग एवं मोक्ष की अभिलाषा से आपको नमस्कार है, आप दिव्य शरीर के धारक हैं एवं

घातिया कर्मों के नाश करने वाले हैं, इसलिए आपको नमस्कार है।।13।। विशेष क्या? बस! सविनय प्रार्थना यही है कि आपने जिस अलौकिक विभूति को प्राप्त किया है, वह कृपा कर बहुत शीघ्र हमें भी प्रदान करें, क्योंकि आप संसार के अन्दर कृपानाथ हैं एवं याचकों के लिए कल्पवृक्ष हैं।।14।। इस प्रकार देवेन्द्रों ने भक्तिपूर्वक श्रीजिनेन्द्र भगवान की स्तुति की, जिस अभीष्ट वस्तु की उन्हें प्रार्थना करनी थी, वह प्रार्थना की एवं वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने के लिए वे श्री जिनेन्द्र भगवान के सन्मुख अपने-अपने कोठों में जाकर बैठ गये।।15।। श्रीमल्लिनाथ भगवान के सबसे **प्रधान गणधर विशाख थे,** जो कि पूर्ण बुद्धि के धारक थे, नाना प्रकार की ऋद्धियों को प्राप्त थे। जिस समय उन्होंने देखा कि कोठों में बैठने वाले समस्त भव्य जीव धर्म का स्वरूप जानने के लिए उत्सुक हैं, वे उठे, हाथों को जोड़कर उन्होंने तीन जगत् के गुरु श्री जिनेन्द्र भगवान को भक्तिभाव से नमस्कार किया। सैकड़ों प्रकार के स्तुति परिपूर्ण वचनों से स्तुति की एवं स्वयं इस प्रकार श्रीजिनेन्द्र भगवान से पूछने लगे-

'हे देव! आप सर्वज्ञ हैं, इसलिए तत्त्वों का स्वरूप, धर्म का अखण्ड लक्षण एवं बारह अंगों के अन्दर जो-जो बातें बतलाई गई हैं, उन सब बातों के जानकार हैं। कृपाकर उन सब बातों का हमारे जानने के लिए स्वरूप वर्णन करिये।।16-18।।' गणधर विशाख की इस प्रकार की पवित्र धर्म जिज्ञासा सुनकर समस्त प्राणियों का हित सम्पादन करने के लिए एवं मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति प्रकट करने के लिए ''जीवों को वास्तविक ज्ञान हो'' इस कृपा से प्रेरित वे श्रीजिनेन्द्र भगवान धर्मोपदेश के लिए प्रवृत्त हो गये।।19।। यह नियम है कि वक्ता जिस समय बोलता है, उसके मुख पर कुछ विकार एवं तालु अथवा ओठों का हलन-चलन होने लगता है। परन्तु जिस समय भगवान धर्मोपदेश के लिए प्रवृत्त हुए थे, उस समय उनके मुख पर किसी प्रकार का विकास नहीं प्रतीत होता था एवं तालु-ओंठ आदि का हलन-चलन भी किसी प्रकार से नहीं होता था; इसलिए इस आश्चर्यकारी रूप से श्रीजिनेन्द्र भगवान के मुख से वचन-भंगी निकलती थी। वे श्रीजिनेन्द्र भगवान, गणधर विशाख को उत्तर में इस प्रकार कहने लगे-'हे बुद्धिमान समस्त सभासदों के स्वामी! मैं आगम के स्वरूप का विस्तार से वर्णन करता हूँ, वह तुम्हें एवं समस्त जन को चित्त एकाग्र कर ध्यानपूर्वक सुनना चाहिए।

जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा एवं मोक्ष-ये तत्त्व सात हैं। इस जीव-अजीव आदि तत्वों के भेद, उनका विस्तार, कौन तत्त्व देव है एवं कौन उपादेय है, यह बात जीव-अजीव आदि का लक्षण एवं द्रव्य पर्यायों के भेद, इन सब बातों को उन्होंने कहा।।20-23।। तथा बोले कि यह संसार रूपी समुद्र अपार है, इस अपार संसार रूपी समुद्र से उठाकर जो जीवों को मोक्ष में ले जाकर रखे, वह 'धर्म' कहा जाता है एवं वह अनन्त सुखों का समुद्र स्वरूप है।।24।। वह दयामय धर्म, 'सकल' एवं 'विकल' के भेद से दो प्रकार का है-सकल-धर्म को धारण करने वाले मुनि होते हैं एवं विकल धर्म को धारण करने वाले श्रावक होते हैं एवं वह स्वर्ग तथा मोक्ष

के सुखों को प्रदान करने वाला है।।25।। गृहस्थों की ग्यारह प्रतिमाओं का वर्णन करते हुए श्रीजिनेन्द्र कहने लगे–धर्म का मूल कारण समस्त दोषों से रहित सम्यग्दर्शन है एवं वह मोक्ष की परम प्यारी वस्तु है। जो महानुभाव धर्म को धारण का मोक्ष प्राप्त करना चाहते हें, वे चाहे गृहस्थ या मुनि कोई हों, उन्हें सबसे पहले सम्यग्दर्शन धारण करना चाहिए। मद्य, मांस, मधु एवं पाँच उदम्बर, अर्थात् ऊमर, कठूमर, कटहर, पीपर एवं पाकर–इन आठों का त्याग गृहस्थों के आठ मूलगुण हैं। जो महानुभाव अणुव्रत एवं महाव्रतों के धारण करने के अभिलाषी हैं, उन्हें पहले इन आठ मूलगुणों को धारण करना चाहिए। जुआ खेलना 1, शराब पीना 2, मांस खाना 3, वेश्या सेवन करना 4, पर-नारी सेवन करना 5, चोरी करना 6 एवं शिकार खेलना 7–ये सात व्यसन माने गए हैं; इन सातों प्रकार के व्यसनों का सर्वथा त्याग कर जो पुरुष आठ मूलगुणों को धारण करता है, वह सम्यग्दर्शन से शुद्ध कहा जाता है एवं जो महानुभाव इस प्रकार सात व्यसनों का त्याग कर आठ मूलगुणों को धारण करता है, वह 'दर्शन' नामक पहली प्रतिमा का धारक माना जाता है।।26-28।। हिंसा 1, चोरी 2, झूठ 3, कुशील 4 एवं परिग्रह 5–स्थूल रूप से इन पाँचों पापों का त्याग करना पाँच प्रकार का अणुव्रत है। दिग्व्रत, अनर्थदण्डव्रत तथा भोगोपभोग परिमाणव्रत–इस प्रकार ये तीन गुणव्रत हैं एवं देशावकाशिक 1, सामायिक 2, प्रोषधोपवास 3, तथा अतिथि सम्विभागव्रत 4–ये चार शिक्षाव्रत हैं; इस प्रकार ये बारह व्रत श्रावकों के हैं।।29।। मन से करना कराना तथा करने की अनुमोदना करना, वचन से करना-कराना तथा अनुमोदना करना एवं शरीर से करना-कराना तथा अनुमोदना करना, इस प्रकार मन-वचन-काय तथा कृत-कारित अनुमोदना से जो दो इन्द्रिय आदि जीवों का घात नहीं करना है, वह पहला अणुव्रत कहा जाता है।।30।। यह अहिंसा समस्त व्रतों की जननी है अर्थात् जब तक हृदय में अहिंसा की सत्ता नहीं है, तब तक किसी भी व्रत का पालन नहीं हो सकता। यह समस्त गुणों की खान है। अहिंसा का पालन करने से ही आत्मा में समस्त गुणों की प्राप्ति होती है एवं वह धर्मरूपी वृक्षों को उत्पन्न करने वाली उत्तम भूमि है–अहिंसा के पालन से ही वास्तविक धर्म की उत्पत्ति होती है।।31।। मन-वचन-काय एवं कृत-कारित अनुमोदना से दूसरे करने वाले हैं, उन्हें चाहिए कि जब बोलें, उस समय सत्य ही बोलें, हितकारी बोलें, बहुत थोड़ा परिमित बोलें, पक्षपात् रहित निर्दोष बोलें, ''मारो-बाँधों'' इत्यादि शब्द कभी न बोलें एवं बहुत मीठा तथा धर्म के स्वरूप को सूचित करने वाला वचन बोलें।।32-33।। जो सोना-चाँदी आदि वस्तुयें नष्ट हों अर्थात्! जमीन आदि के अन्दर गड़ी आदि हों या मार्ग आदि में गिरी पड़ी हों किसी कारणवश भूली हुई हों, उन्हें मन-वचन-काय तथा कृतकारित अनुमोदना से जो ग्रहण नहीं करना है, वह तीसरा 'अचौर्य' नाम का अणुव्रत है। पर-स्त्रियों को जो माता आदि के समान समझता है अर्थात् अपने से छोटी स्त्री में पुत्री के भाव, बराबर वाली में बहन सरीखे भाव एवं बड़ी में माता सरीखे भाव होना है एवं उन्हें देखकर जरा भी राग-भाव का न होना है, वह चौथा 'ब्रह्मचर्य' (स्वदारा सन्तोष) नाम का

अणुव्रत है।।35।। तथा सन्तोष को हृदय में धारण कर एवं लोभ का त्याग कर ऊपर जो क्षेत्र, वास्तु आदि दस प्रकार के परिग्रह कहे गए हैं, उनका परिमाण कर लेना है अर्थात् हम अमुक वस्तु इतनी की रखेंगे, इस प्रकार की मर्यादा बाँध लेता है, वह पाँचवाँ 'परिग्रह परिमाण' नाम का अणुव्रत है।।36।। इन पाँचों अणुव्रतों के पालन करने का फल यह है कि पंचाणुव्रती महानुभाव पवित्र पुण्य उपार्जन कर सोलहवें स्वर्ग तक के सुखों को भोगते हैं एवं पाप के आगमन को रोकते हैं।।37।।

दिशाओं की मर्यादा कर उनसे आगे न जाना दिग्व्रत कहा जाता है। जीवों के घात आदि न हों, इस पवित्र अभिलाषा से जो दिशाओं के अन्दर यह परिमाण कर लेता है कि अमुक दिशा में मैं इतने कोस तक जाऊँगा, उससे आगे न जाऊँगा, 'दिग्व्रत' नाम का गुणव्रत है।।38।। जिन-जिन कार्यों से व्यर्थ ही पाप का आस्रव होता हो, उन कार्यों का जहाँ पर त्याग हो एवं अपध्यान खोटेध्यान आदि का भी त्याग हो, वह अनर्थदण्ड व्रत है। इसका विशेष तात्पर्य यह है–

बिना प्रयोजन ही जीवों को दण्ड देना, अनर्थदण्ड कहा जाता है एवं उसका त्याग कर देना, 'अनर्थदण्डव्रत' नाम का गुणव्रत है। अनर्थदण्ड के पापोपदेश 1, हिंसादान 2, अपध्यान 3, दु:श्रुति 4 एवं प्रमादचर्या 5–ये पाँच भेद हैं। मारना, बाँधना, बहुत बोझा लादना आदिरूप से तिर्यञ्चों को क्लेश देने वाला उपदेश देना, व्यापार का उपदेश देना, जिस कार्य के करने से छ: काय के जीवों की हिंसा होती हो, ऐसा हिंसा परिपूर्ण उपदेश देना या महल आदि का बनवाना रूप आरम्भ का उपदेश देना एवं छल, कपट, धोखेबाजी की उपदेश देना, इस प्रकार पाप का कारण उपदेश देना 'पापोपदेश' नाम का अनर्थदण्ड है। फरसा, तलवार, फावड़ा, अग्नि, आयुध तथा बेड़ी आदि हिंसा के उपकरणों को दूसरे को प्रदान करना, 'हिंसादान' नाम का अनर्थदण्ड है। तीव्र द्वेष या तीव्र राग से परायी स्त्री-पुत्र आदि के विषय में यह चिन्तवन करना कि यह बँध जाय या मर जाय या छिद जाय आदि तो अच्छा हो, ऐसे खोटे चिन्तवन का नाम 'अपध्यान' नाम का अनर्थदण्ड है। जो शास्त्र, असि, मषि, कृषि आदि आरम्भ, धन-धान्य आदिक परिग्रह, रौद्र कामों का साहस, मिथ्यात्व द्वेष, राग, अहंकार तथा काम के विकारों का उत्पन्न करने वाले हों, ऐसे खोटे शास्त्रों का सुनना-विचारना 'दु:श्रुति' नाम का अनर्थदण्ड है। पृथ्वी खोदना, जल बहाना, अग्नि का जलाना तथा पवन का फूँकना–इस प्रकार व्यर्थ आरम्भ करना, बिना कारण वनस्पति का छेदना, स्वयं चलना तथा दूसरों को चलाना, यह सब 'प्रमादचर्या' नाम का अनर्थदण्ड है। इन पाँचों प्रकार के अनर्थदण्डों का त्यागना, अनर्थदण्डव्रत कहा जाता है।

आगे तांबूल, अन्न आदि भोगरूप पदार्थों का तथा स्त्री, भूषण, वस्त्र आदि उपभोग स्वरूप पदार्थों का जो प्रमाण करना है, वह 'भोगोपभोग परिमाण' नाम का गुणव्रत है। जो वस्तु एक बार

भोगकर पुनः भोगने में न आवे, वह भोग तथा जो बारम्बार भोगने में आवे, वह उपभोग स्वरूप कहलाती है। पान, इलायची, भोजन आदि पदार्थ एक ही बार भोगने में आते हैं; इसलिए ये भोगस्वरूप हैं एवं स्त्री, भूषण आदि पदार्थ बारम्बार भोगने में आते हैं इसलिए ये उपभोग स्वरूप हैं। इन तीनों दिग्व्रतों के साथ-साथ अनन्त जीवों से व्याप्त अदरख आदि कन्दमूलों को, जिनके मूल भाग में कीड़े हों, ऐसे फलों को तथा निन्द्य पुष्प आदि वस्तुओं को भी विष के समान अहितकारी जान कर त्याग देना चाहिये।।39-41।। पूर्व दिशा में सौ कोस तक जाऊँगा या उत्तर दिशा में मैं पचास कोस आदि तक जाऊँगा, ऐसा परिमाण करना तो दिग्व्रत का विषय है, परन्तु इसी परिमाण में से क्षेत्र की मर्यादा बाँध कर जो प्रतिदिन यह परिमाण कर लेता है कि आज मैं अमुक घर तक जाऊँगा अथवा मन्दिर तक जाऊँगा, मन्दिर से बाहर नहीं जाऊँगा, वह 'देशावकाशिक' नाम का शिक्षाव्रत कहलाता है। यह 'देशावकाशिक' शिक्षाव्रत विशेष रूप से जीव की हिंसा का निरोधक होने से निर्मलता का कारण है; इसलिए मोक्ष को प्राप्त कराने वाला माना जाता है।।42।। सामायिक का विधान तीनों काल माना जाता है, जो महानुभाव मोक्ष प्राप्ति की अभिलाषा से मन-वचन-काय की शुद्धता से तीनों काल सामायिक करते हैं, उनके 'सामायिक' नाम का दूसरा शिक्षाव्रत होता है।43।। प्रत्येक मास की अष्टमी चतुर्दशी के दिन किसी प्रकार के आरम्भ को न कर नियम से उपवास करना है, वह 'प्रोषधोपवास' नाम का तीसरा शिक्षाव्रत है।।।44।। उत्तम पात्रों आदि को दान देने के लिए जो प्रतिदिन अपने घर का द्वार देखते हैं, द्वाराप्रेक्षण करते हैं तथा पात्रों को प्राप्त होने पर उन्हें आहार, औषधि आदि चारों प्रकार का दान करते हैं; वे महानुभाव 'अतिथिसंविभाग' नाम के चौथे शिक्षाव्रत के धारक हैं। जिसकी कोई निश्चित तिथि न हो, वे 'अतिथि' कहलाता है एवं 'संविभाग' का अर्थ निर्दोष वस्तु का देना है अर्थात् मुनि आदि अतिथियों के लिए जो आहार, औषधि आदि को प्रदान करता है, वह 'अतिसंविभाग' का अन्वर्थ है।।45।। 'ग्रन्थकार' फल प्रदर्शन करते हुए कहते हैं कि जो महानुभाव उपर्युक्त व्रतों का अतीचार रहित पालन करते हैं, उन्हें सोलहवें स्वर्ग के दिव्य सुख भोगने के लिए प्राप्त होते हैं।।46।।

व्रतों को पालन करने वालों के लिए अन्त समय में सल्लेखना का भी विधान है। सल्लेखना का लक्षण यह बतलाया गया है कि तीव्र उपसर्ग आने पर या दुर्भिक्ष उपस्थित होने पर या अत्यन्त वृद्धावस्था होने पर अथवा तीव्र रोग के उपस्थित होने पर जिसका कि किसी प्रकार से प्रतीकार न हो सके—मृत्यु का ही समय आ कर उपस्थित हो जाय, उस समय किसी कषाय आदि से प्रेरित न होकर धर्म के लिए जो सन्यासपूर्वक शरीर का त्याग करता है, वह 'सल्लेखना व्रत' है। जो महानुभाव बारह व्रतों के पालन करने वाले हैं, उन्हें उपर्युक्त व्रतों का यावज्जीवन पालन कर अन्त में मृत्यु के समय उन समस्त व्रतों के पवित्र फल की प्राप्ति के लिए शुद्ध भावों से सल्लेखना करनी चाहिए।।47।। इस प्रकार जो महानुभाव इन बारह व्रतों का अतीचार रहित विशुद्ध भावों से

पालन करता है, उसके दूसरी प्रतिमा होती है, जो कि स्वर्गरूपी लक्ष्मी की सखी स्वरूप मानी गई है।।48।। तीसरी सामायिक प्रतिमा है, जो पुरुष प्रत्येक दिशा में तीन-तीन आवर्त इस प्रकार बारह आवर्तों को कर एवं चारों दिशाओं में चार प्रमाण कर स्थिति होने वाला है, यथाजात रूप का धारक हो, दोनों प्रकार के आसनों से युक्त हो, मन-वचन-काय को शुद्ध रखने वाला हो, एवं तीनों काल सामायिक करने वाला हो, वह सामायिक प्रतिमा का धारक है। चौथी प्रतिमा का नाम 'सत्प्रोषधोपवास' है। जो महानुभाव प्रत्येक मास की अष्टमी एवं चतुर्दशी को शक्ति को न छिपाकर प्रोषधों का पालन करने वाला है, वह कर्मों को नाश करने वाली 'सत्प्रोषधोपवास' प्रतिमा का धारक है। पाँचवीं प्रतिमा का नाम 'सचित्तविरत' है, जो महानुभाव इस पाँचवीं प्रतिमा का पालन करना चाहें, उन्हें मन-वचन एवं काय से सचित्त, पत्र, बीज तथा फल आदि का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए एवं उन्हें अप्रासुक जल भी ग्रहण नहीं करना चाहिए।।49-50।। छठी प्रतिमा 'रात्रिभुक्तिविरत' है। जो महानुभाव रात्रिभुक्ति प्रतिमा के धारक हैं उन्हें दया-धर्म की प्राप्ति के लिए जिस प्रकार अखाद्य—नहीं खाने योग्य वस्तु का सर्वथा त्याग कर दिया जाता है, उसी प्रकार रात्रि अन्न, पान, खाद्य एवं स्वाद्य—इन चारों प्रकारों के आहार का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए। अन्न से यहाँ पर भोजन लिया गया है। पान से दूध, शरबत आदि पीने योग्य पदार्थ का ग्रहण है। खाद्य से खाने योग्य पदार्थ पेड़ा, लाडू आदि लिए हैं एवं स्वाद्य से इलायची, पान, सुपारी आदि पदार्थों का ग्रहण है।।51।। इस प्रकार जो महानुभाव पहली प्रतिमा से छठी प्रतिमा पर्यंत यह प्रतिमाओं का निर्दोष रूप से पालन करने वाला है, सम्यग्दर्शन से वह महानुभाव जघन्य श्रावक माना गया है।।52।। सातवीं 'ब्रह्मचर्य'' प्रतिमा है। जो महानुभाव अपनी-पराई समस्त स्त्रियों को अपनी माता के समान मानता है एवं उनसे रंचमात्र भी राग का स्पर्श नहीं रखता, वह महानुभाव 'ब्रह्मचर्य' प्रतिमा का पालन करने वाला ब्रह्मचारी है।।53।। घर का समस्त आरम्भ अनेक प्रकार के पापों का कारण है अर्थात् सेवा, खेती, व्यापार आदि कोई भी आरम्भ किया जाय, नियम से उससे पापों की उत्पत्ति होती है। जो महानुभाव इस प्रकार पाप के कारण स्वरूप घर से आरम्भ का मन-वचन एवं काय की शुद्धतापूर्वक त्याग करने वाले हैं, उन महानुभाव के 'आरम्भ त्याग' नामक आठवीं प्रतिमा होती है।।54।। नवमी प्रतिमा का नाम 'परिचित-परिग्रह-त्याग' है। परिग्रह समस्त अनर्थों का मूल कारण है। जो महानुभाव वस्त्र एवं पात्र के सिवाय शेष समस्त प्रकार के परिग्रह का त्यागी है अर्थात् क्षेत्र, वास्तु आदि ऊपर कहे गए दस प्रकार के परिग्रह से ममत्व हटाकर जो महानुभाव निर्ममत्व परिणाम में लीन है एवं अपने आत्मस्वरूप के अंदर विराजमान है तथा सन्तोषी है, वह पुरुष 'परिचित-परिग्रह-त्याग' नामक नवमी प्रतिमा का धारक है।।55।।इस प्रकार जो सम्यग्दृष्टि, रागरहित एवं धर्म में लीन होकर इन नौ प्रतिमाओं का निर्दोष रूप से पालन करने वाला है, वह मध्यम श्रावक कहा जाता है।।56।। दसवीं प्रतिमा का नाम 'अनुमति-त्याग' है। जो महानुभाव घर आदि के कार्यों में एवं आहार आदि में रंचमात्र भी अपनी अनुमति (सलाह)

नहीं देता अर्थात् सदा मध्यस्थ भाव रखता है, वह महानुभाव 'अनुमति त्याग' नामक दसवीं प्रतिमा का धारक कहा जाता है।।57।। तथा ग्यारहवीं प्रतिमा का नाम 'उत्कृष्ट श्रावक' है। जो महानुभाव अपने निमित्त से होने वाले 'सदोष' आहार को अखाद्य के समान निन्दनीय जानकर उसे ग्रहण नहीं करता एवं लोभि वृत्ति से आहार ग्रहण करता है अर्थात् घर-बार से विरक्त होकर जहाँ मुनिराज विराजमान हों, उस वन में जाकर एवं गुरु के समीप में व्रतों को धारण कर तप का आचरण करता है, भिक्षाचर्या से आहार ग्रहण करता है एवं चैलखण्ड-कोपीनमात्र परिग्रह का धारक है, वह पुरुष 'उत्कृष्ट श्रावक' नामक ग्यारहवीं प्रतिमा का धारक है।।58।। इस प्रकार जो सम्यग्दृष्टि मोक्ष प्राप्ति की अभिलाषा से इन ग्यारह प्रतिमाओं का निर्दोष रूप से पालन करता है, वह 'उत्कृष्ट श्रावक' है एवं वह स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति का पात्र है।।59।। इस प्रकार गृहस्थ धर्म का उपदेश देकर श्रीजिनेन्द्र भगवान ने कहा कि गृहस्थों को आनन्द प्रदान करने के लिए गृहस्थ धर्म का वर्णन कर दिया गया; अब यतियों को आनन्द प्रदान करने के लिए यति धर्म का व्याख्यान किया जाता है–

अहिंसा आदि पाँच महाव्रत, ईर्या आदि पाँच समितियाँ, पाँचों इन्द्रियों का निरोध 15, केशों का लोंच करना 16, समता आदि छः आवश्यक 22, समस्त वस्त्र का त्याग 23, यावज्जीवन स्नान का न करना 24, भूमि पर शयन 25, दन्तधावन नहीं करना 26, रागरहित खड़े-खड़े आहार लेना 27 एवं एक बार लघु भोजन करना 28–ये अट्ठाईस मुनियों के मूल गुण हैं। समीचीन धर्म के मूल कारण होने से इनकी मूल गुण संज्ञा है एवं ये मोक्षप्रदान करने वाले हैं।।60-63।। मूलगुणों की प्रशंसा करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं कि ये मूलगण वास्तविक धर्म के मूल कारण हैं एवं यम-नियम आदि की उत्पत्ति के भी प्रधान कारण हैं एवं मूलगुणों के पूर्ण रूप से पालन करने से ही चौरासी लाख उत्तर गुणों की सिद्धि होती है; इसलिए जो पुरुष उत्तर गुणों की प्राप्ति के अभिलाषी हैं, उन्हें प्राणों के जाने पर भी कभी भी इन मूलगुणों का परित्याग नहीं करना चाहिए तथा इन समस्त मूलगुणों के आचरण करने से वास्तविक धर्म की प्राप्ति होती है, उस धर्म की कृपा से तीनों लोक का महान कल्याण प्राप्त होता है एवं क्रम से मोक्ष भी मिलता है। इसलिए जो महानुभाव धर्म को प्राप्त करना चाहते हैं एवं अनन्त सुखमय मोक्ष प्राप्ति की पूरी-पूरी अभिलाषा रखते हैं, उन्हें दिगम्बरी जैन दीक्षा धारण कर मन-वचन-काय की शुद्धिपूर्वक समस्त मूलगुणों की अच्छी तरह आराधना करना चाहिए। उनके पालन करने में किसी प्रकार की विराधना न हो, यह हर समय ध्यान रखना चाहिए।।64-66।।

उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य एवं ब्रह्मचर्य–ये दस लक्षण वास्तविक धर्मरूपी कल्पवृक्ष के बीज स्वरूप हैं–इनको धारण करने से वास्तविक धर्म की नियम से उत्पत्ति होती है। इसलिए जो पुरुष धर्म प्राप्त करना चाहते हैं एवं मोक्ष प्राप्ति की हृदय में पूरी-पूरी अभिलाषा रखते हैं, उन्हें वास्तविक धर्म के कारण स्वरूप उत्तम क्षमा आदि लक्षणों का नियम से सेवन करना चाहिए एवं कभी भी उनसे विमुख नहीं रहना चाहिए।।67-69।। उत्तम

आचरण, ध्यान, अध्ययन, वैराग्य भावना, शुद्ध मन-वचन-काय की क्रियायें, निर्दोष समता भाव एवं धर्मानुकूल संवेग की भावनाओं से होता है। इसलिए जो महानुभाव धर्म के अभिलाषी है, उन्हें धर्म की वृद्धि के लिए बारह प्रकार का तप, ध्यान, अध्ययन, शुभयोग एवं आचार आदि का सदा ध्यान रखना चाहिए।।70-72।। इस परम पावन धर्म की कृपा से ही पुत्र-पौत्र आदि की प्राप्ति होती है। इष्ट भोगों का मिलना भी धर्म से ही होता है। सज्जन एवं मित्र के समान सेवक भी धर्म की कृपा से प्राप्त होते हैं। माता-पिता आदि बाँधवों की प्राप्ति भी धर्म की ही कृपा से होती है। श्रृंगार की खानि एवं धर्म कार्यों में पूरी सहायता पहुँचाने वाली स्त्रियाँ, पर्वत के समान विशाल गजराज, ऊँचे-ऊँचे रथ एवं अच्छी तरह प्रशिक्षित अश्व भी धर्म की कृपा से प्राप्त होते हैं; छत्र, चमर, राज्य आदि पदार्थ, उत्तमोत्तम भूषण, ऊँचे-ऊँचे मकान और भी उत्तमोत्तम पदार्थ धर्मात्माओं को स्वतः सिद्ध (प्राप्त) होते हैं। जो पुरुष धर्मात्मा हैं उनके समस्त प्रकार के कल्याणकों को प्रदान करने वाली लक्ष्मी धर्म रूपी मन्त्र से वश की गई गृहदासी के समान रहती है। अहमिन्द्रपद, इन्द्रपद, सर्वार्थसिद्धि विमान की विभूति, उत्तम स्वर्ग का सुख भी धर्म की कृपा से प्राप्त होता है। जो मनुष्य धर्मात्मा हैं, धर्म की कृपा से उनके छह खण्ड की विभूति, नौ निधि, चौदह दत्न, सुदर्शन चक्र आदि समस्त चक्रवर्ती की विभूति प्राप्त होती है और भी अनेक प्रकार की लक्ष्मी प्राप्त होती हैं सबसे पवित्र एवं प्रधान तीर्थंकर की विभूति है; परन्तु धर्मात्माओं को धर्म की कृपा से वह भी प्राप्त हो जाती है। गणधर पद एवं ऋद्धि आदि अनेक प्रकार की विद्यायें भी धर्म की कृपा से प्राप्त होती हैं। विशेष क्या? तीनों लोक में जो वस्तु बहुत दूर है, अत्यन्त दुर्लभ है एवं अमूल्य है, वह वस्तु भी धर्म की कृपा से अपने-आप हाथ पर आकर विराज जाती है। मोक्षलक्ष्मी की प्राप्ति संसार में अत्यन्त कष्टसाध्य है; परन्तु जो महानुभाव धर्मरूपी धन के स्वामी हैं, वह मुक्ति लक्ष्मी भी उन पर रीझ जाती है एवं पास आकर प्राप्त हो जाती है, फिर अन्य देवांगनाओं की तो बात ही क्या है अर्थात् धर्म की कृपा से उनका प्राप्त होना अत्यन्त सुलभ है। इसलिए ग्रन्थकार उपदेश देते हैं कि जो महानुभाव धार्मिक हैं—परम धर्मात्मा हैं, उन्हें यत्नपूर्वक सदा धर्म का सेवन करना चाहिए। जो महानुभाव पूर्व पुण्य के उदय से संसार में सुखी हैं, उन्हें भी धर्म वृद्धि, सुख-वृद्धि एवं मोक्ष के लिए धर्म धारण करना चाहिए। जो दुःखी हैं, उन्हें दुःख दूर करने के लिए सदा उत्तम धर्म धारण करना चाहिए। पापी जीवों को पाप की हानि के लिए धर्म धारण करना परमावश्यक है एवं जो संसार की दुष्ट दशा से भयभीत हैं, उन्हें मोक्ष की प्राप्ति के लिए धर्म का सेवन करना चाहिए। संसार में मनुष्य जन्म का पाना अत्यन्त दुर्लभ है—बड़ी कठिनता से प्राप्त होता है; इसलिए जो मनुष्य विद्वान हैं—संसार की परिस्थिति के वास्तविक रूप से जानकार हैं, उन्हें काल का एक क्षणमात्र भी धर्म कार्य के बिना नहीं बिताना चाहिए।।73-84।।

इस प्रकार जिस समय श्रीजिनेन्द्र भगवान ने समीचीन धर्म, उसका फल एवं उसके भेद आदि का विस्तार से वर्णन किया, उस समय समोवशरण के अन्दर जितने भी भव्य बैठे थे,

सबकी परिणति धर्म कार्यों की ओर झुक गई।।85।। धर्मोपदेश के साथ-साथ श्रीजिनेन्द्र भगवान ने मोक्ष का फल, मोक्ष का मार्ग एवं मोक्ष के कारणों का भी विस्तार से निरूपण किया। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव एवं भाव-इस प्रकार पाँचों परावर्तनों का भी खुलासा रूप से प्रतिपादन किया।।86।। अधोलोक, मध्यलोक एवं ऊर्ध्वलोक के भेद से लोक तीन प्रकार का है। श्री जिनेन्द्र भगवान ने तीनों प्रकार के लोक का भी विस्तार से वर्णन किया। लोक के बाद आलोक है। सिवाय आकाश-द्रव्य के उसके अन्दर कोई भी द्रव्य नहीं रहता, श्री जिनेन्द्र भगवान ने अपनी दिव्य वाणी से उसका भी निःसन्देह रूप से वर्णन किया।।87।। 'उत्सर्पिणी' एवं 'अवसर्पिणी' के भेद से काल दो प्रकार का माना गया है। जिस काल में मनुष्यों के बल, वीर्य आदि की निरन्तर वृद्धि होती जाय, उस काल का नाम 'उत्सर्पिणी' है एवं जिस काल में उनकी हीनता होती जा, उस काल को 'अवसर्पिणी' माना गया है। उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी दोनों कालों में से प्रत्येक काल के छः-छः भेद माने हैं वे सुषमा-सुषमा 1, सुषमा 2, सुषमा-दुषमा 3, दुःषमा-सुषमा 4, दुःषमा 5 एवं दुषमा-दुषमा 6-इस रूप से हैं। श्रीजिनेन्द्र भगवान ने किस रूप से किस काल की हानि होती है एवं किस रूप से किस काल की वृद्धि होती है, विस्तार से यह बात बतलाई तथा कौन-कौन काल में कितना-कितना आयु, काय आदि का परिमाण होता है, विस्तार से यह बात भी श्रीजिनेन्द्र भगवान ने अच्छी तरह प्रतिपादन की।।88।। तीर्थंकर, **बलभद्र, चक्रवर्ती, नारायण** एवं **प्रतिनारायणों के चरित्रों** का भी वर्णन किया एवं उनके कैसे शरीर थे, कैसी-कैसी ऋद्धियाँ थी, कैसे-कैसे उन्हें सुख प्राप्त थे एवं कैसी-कैसी उनके शरीर आदि की सामर्थ्य थी-यह बात भी अच्छी तरह वर्णन की।।89।। द्वादशांग श्रुतज्ञान के अन्दर तीनों काल सम्बन्धी पदार्थों का जो भी वर्णन था, वह भी श्री जिनेन्द्र भगवान ने गणधरों के लिए व्यक्त कर बतलाया।।90।। श्रीजिनेन्द्र भगवान के मुख से निकले हुए महामिष्ट वचनरूपी धर्मामृत का पान का समस्त गण-संघ ने उस समय अपने को जन्मरूपी दाह से रहित समझा एवं वे अपने को परम सुखी अनुभव करने लगे।।91।। श्री जिनेन्द्र भगवान का उपदेश सुन कर बहुत से धर्मात्मा भव्य जीवों को संसार से उदासीनता हो गई। उन्होंने धर्म-सम्बन्धी कार्यों के अन्दर मन लगाया एवं वैराग्यरूपी वज्र से मोहरूपी पर्वत के खण्ड-खण्ड कर पवित्र तप धारण कर लिया।।92।। श्रीजिनेन्द्र भगवान के मुख से धर्मोपदेश पाकर बहुत से पशु एवं मनुष्यों ने श्रावक व्रत अर्थात् अणुव्रतों को धारण कर लिया एवं तप, दान, पूजन आदि पवित्र कार्यों में उन्होंने अपने भावों को दृढ़ किया।।93।। बहुत से देवों ने काललब्धि की कृपा से श्रीजिनेन्द्र भगवान के मुख से धर्मामृत का पान कर मिथ्यादर्शनरूपी विष का वमन कर दिया एवं सम्यग्दर्शन को धारण कर लिया।।94।। गणधरों में प्रधान गणधर विशाख ने भी समस्त भव्य जीवों का उपकार हो, मोक्ष-मार्ग की प्राप्ति हो एवं अहिंसारूपी धर्म तीर्थ की प्रवृत्ति हो, इस अभिलाषा से अपनी निरुपम प्रखर बुद्धि से श्रीजिनेन्द्र के मुख से तत्स्वरूप प्राप्त कर उसे करोड़ों नयों की भंगियों के साथ द्वादशांग महासमुद्र रूप रच दिया।।95-96।।

भगवान की दिव्य-ध्वनि का खिरना जिस समय समाप्त हुआ एवं मनुष्यों का कोलाहल शान्त हो गया, उस समय धर्म-तीर्थों में श्रीजिनेन्द्र भगवान का विहार हो, इस पवित्र अभिलषा को हृदय में धारण कर समस्त प्राणियों के हित के इच्छुक सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र ने बड़े आनन्द से श्री जिनेन्द्र भगवान के दोनों चरण कमलों को प्रणाम किया एवं धर्मोपदेश से जायमान जो गुण हैं, उन्हें लक्ष्य कर वह श्री जिनेन्द्र भगवान की इस प्रकार स्तुति करने लगा–

'हे भगवान! आपके वचनरूपी किरणों से मोह एवं अज्ञानरूपी अन्धकार आज सर्वथा नष्ट हो रहा है, जिससे भव्य जीवों को वास्तविक मार्ग का ज्ञान हो रहा है। इसलिए तीनों लोक के भरण-पोषण करने वाले आप ही हैं एवं आप ही समस्त भव्य जीवों के बन्धुस्वरूप है।।97-99।। गम्भीर समुद्र के अन्दर पड़ने वाले जीव जिस प्रकार जहाज के सहारे अपने अभीष्ट स्थान पर पहुँच जाते हैं, उसी प्रकार हे स्वामी! यह संसार रूपी समुद्र दुस्तर है–जल्दी तिरा नहीं जा सकता, इसमें गोता मारते हुए प्राणियों को धर्मोपदेश रूपी जहाज की सहायता से आप ही तार सकते हो एवं उन प्राणियों की अभिलाषा मोक्षरूपी पत्तन को प्राप्त करने की है, सो उस पत्तन में आप ही उन्हें पहुँचा सकते हो, अन्य किसी की इस समय वैसी सामर्थ्य नहीं।।100।। संसार में तारागण, कन्दमूल के अंदर रहने वाले जीव, समुद्र की लहरें, आकाश के प्रदेश एवं एकेन्द्रिय आदि जीवों की गणना नहीं की जा सकती–कितना भी कोई प्रयत्न क्यों न करे, उन्हें गिन नहीं सकता। उसी प्रकार है भगवान! आप गुण के समुद्र हैं, इसलिए आपके अगणित गुणों को भी गिना नहीं जा सकता अर्थात् आप अनन्त गुणों के पिण्ड स्वरूप हैं।।101।। इसलिए हे नाथ! आपके गुण अनन्त हैं एवं हमारे सरीखे हीन-शक्ति के पुरुष उन्हें वर्णन करने की सामर्थ्य नहीं रखते, अतः आपके गुणों के वर्णन करने के लिए हम किसी प्रकार का परिश्रम नहीं उठाना चाहते।।102।। हे तीनों लोक के स्वामी भगवान! जिस प्रकार सूर्य के उग्र ताप से मुरझाये हुए धान्यों के पौधों को जल से सींचा जाता है, उस समय वे उत्तम फलों को प्रदान करते हैं, उसी प्रकार ये भव्यरूपी धान्य पाप के आताप आदि से मुरझाये हुए हैं–पाप की तीव्रता से इनकी आत्म-शक्ति हीन हो चुकी है, आप धर्मामृत प्रदान कर इन्हें सबल बनावें, जिससे ये उत्तम फलों को प्राप्त कर लें।।103।। हे प्रभो! समस्त प्रकार के अनर्थों को करने वाली बलवान शत्रु मोहनीय कर्म की सेना को आपने सर्वथा नष्ट कर दिया है एवं सन्मार्ग के उपदेश करने की आपको परिपूर्ण योग्यता प्रगट हो गई है। अब यह समय उस वास्तविक मार्ग के उपदेश का आकर उपस्थित हो गया–आप भव्य जीवों को धर्मोपदेश प्रदान करें। विशेष कहना व्यर्थ है! प्रभो! प्रार्थना यही है कि भव्य-जीवों के आप शरण बनें–उन्हें वास्तविक मार्ग का उपदेश प्रदान करें, क्योंकि इस संसार में भव्य जीवों के शरण आप ही हैं–आपके सिवाय अन्य कोई शरण नहीं हो सकता।' इस प्रकार विनयपूर्वक निवेदन कर वह धर्मात्मा सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र अपनी जगह पर जाकर बैठ गया।।104-105।।

जिस प्रकार सूर्य कमलों को खिलाने रूप उपकार करने वाला है एवं समस्त जीवों के हित

में उद्यत रहता है अर्थात् सूर्य के उदयकाल में ही समस्त प्राणी अपने-अपने हितकारी कार्यों में उद्यत होते हैं, उसी प्रकार धर्म के सूर्य स्वरूप वे श्रीजिनेन्द्र भगवान समस्त जीवों के हित में उद्यत होकर समस्त भव्य जीवरूपी कमलों के उपकार की अभिलाषा से इन्द्र की प्रार्थना के अनुसार शीघ्र ही अपने आसन से उठ खड़े हुए एवं चक्रवर्ती जिस प्रकार विशाल विभूति एवं सेना आदि के साथ दिग्विजय करने के लिए जाता है एवं चक्र उसके आगे चलता है, उसी प्रकार धर्म के चक्रवर्ती वे श्रीजिनेन्द्र भगवान मुनि-आर्यिका आदि संघ एवं अनेक देवों के साथ विशाल विभूति से मण्डित होकर दिग्विजय करने के लिए अर्थात् आर्य क्षेत्र में धर्मोपदेश करने के लिए चल दिए एवं धर्मचक्र उनके आगे-आगे चलने लगा।।106-107।। उस समय भगवान के प्रस्थान करने पर पटह आदि अगणित वाद्यों की तुमुल ध्वनि से एवं 'हे देव! जीवें, नादें, विरदें' इत्यादि मनोहर शब्दों से समस्त आकाश को व्याप्त करते हुए देवगण अत्यन्त आनन्दित होकर उनके साथ-साथ चलने लगे।।108।। अर्हंत भगवान के चौंतीस (34) अतिशय माने हैं। उनमें दस जन्म के अतिशय हैं, उनका वर्णन तो उनके जन्म के समय कर दिया गया है। केवलज्ञान के समय दश अतिशय होते हैं, वे इस प्रकार है–

जिस स्थान पर श्रीजिनेन्द्र भगवान का समवशरण है, उसके चारों ओर एक सौ योजन पर्यन्त सुभिक्षता का होना 1, आकाश में गमन 2, व्याघ्र आदि क्रूर जीवों के द्वारा अन्य निर्बल प्राणियों का न मारा जाना अर्थात् अदया का अभाव 3, अलौकिक कल्याण के धारक केवली के भोजन का न होना अर्थात् कवलाहार रहित्पना 4, उपसर्ग का अभाव 5, चारों दिशाओं में चार मुखों का दीखना 6, समस्त विद्याओं का स्वामीपना 7, छाया रहित शरीर का होना 8, नेत्रों के पलकों का न हिलना 9 एवं नख केशों का न बढ़ना 10–इस प्रकार ज्ञानावरण आदि चार घातिया कर्मों के नाश से ये दस अतिशय केवली भगवान के प्रगट होते हैं, जो कि निरोपम्य होते हैं; उनकी उपमा नहीं दी जा सकती। इनके सिवाय शेष चौदह अतिशय देवकृत होते हैं; वे इस प्रकार हैं–

भगवान की भाषा अर्धमागधी थी, जो कि पशु, देव एवं मनुष्यों को भिन्न-भिन्न रूप से समस्त अर्थों को सूचित करती थी 1, स्वभाव से ही 'बध्यघातक' नाम का विरोध रखने वाले सर्प, नेवला आदि जीवों की परस्पर मित्रता थी 2, वृक्षों की पंक्तियाँ समस्त ॠतुओं के फल-पुष्पों से युक्त थीं 3, दर्पण के मध्य भाग के समान अत्यन्त निर्मल मणिमयी पृथ्वी थी 4, वातकुमार देवों के द्वारा शीतल मन्द सुगन्ध पवन बहती थी 5, श्रीजिनेन्द्र भगवान के समीप रहने वाले समस्त जीवों को परमानन्द था 6, पवनकुमार देवो ने जमीन को तृण, कंटक आदि से रहित कर दिया था 7, स्तनितकुमार जाति के भवनवासी देवों ने भगवान के समीप की सौ योजन प्रमाण पृथ्वी सुगन्धित जल की वर्षा से सुगन्धित कर रखी थी 8, चलते समय श्रीजिनेन्द्र भगवान के चरणकमलों तले देवगण सुवर्णमयी कमलों की रचना करते चले जाते थे 9, शालि आदि धान्यों के वृक्ष फलों के भार से नम्रीभूत थे 10, श्रीजिनेन्द्र भगवान के समीप में आकाश एवं दिशायें

निर्मल थीं 11, इन्द्र की आज्ञा से देवगण आपस में एक-दूसरे को बुलाते थे 12, भगवान के आगे-आगे धर्मचक्र चलता था, जो कि हजार आरों का धारक था, अपनी दैदीप्यमान किरणों से समस्त दिशाओं को चमचमाता था, अन्धकार का नाशक था एवं चारों ओर से देवों से वेष्टित था 13, तथा भगवान के चारों ओर दर्पण, कलश, झारी आदि आठ मांगलिक द्रव्य शोभायमान थे 14–इस प्रकार भगवान के ये चौदह अतिशय देवकृत थे।।109-121।। श्रीजिनेन्द्र भगवान के समीप में आठ प्रातिहार्यों की भी अपूर्व शोभा थी एवं वे प्रातिहार्य इस प्रकार थे–

श्री जिनेन्द्र भगसवान के समीप में अशोक वृक्ष विद्यमान था, जो कि शोक का नाश करने वाला था एवं दैदीप्यमान रत्नमय था 1, कल्पवृक्षों से जायमान पुष्पों के समूहों से देवगण पुष्प-वृष्टि करते थे 2, भगवान की दिव्य ध्वनि खिरती थी, जो कि मेघ की गर्जना के समान गम्भीर थी, मधुर थी, समस्त लोक का हित करने वाली थी, अज्ञानरूप अन्धकार का नाश करने वाली थी एवं समस्त पदार्थों के प्रकाश करने में दीपक के समान थी 3, देवगण भगवान के ऊपर चौंसठ चमर ढोरते थे 4, प्रभु का भाँति-भाँति की मणियों से जड़ा हुआ सुवर्णमय दिव्य सिंहासन था 5, भगवान के पीछे भामण्डल विद्यमान था, जो कि करोड़ सूर्यों की प्रभा से अधिक प्रभा का धारक था 6, साढ़े बारह करोड़ वाद्यों के साथ-साथ दुन्दुभी ध्वनि होती थी 7 तथा शीश पर तीन छत्र थे जो कि तीन चन्द्रमा सरीखे जान पड़ते थे एवं मोतियों की मालाओं से सुशोभित थे 8–इस प्रकार ये आठ प्रतिहार्य श्री जिनेन्द्र भगवान की अपूर्व शोभा बढ़ा रहे थे।।122-126।। भगवान के अनन्तज्ञान–केवलज्ञान 1, अनन्तदर्शन–केवलदर्शन 2, अनन्तवीर्य 3 एवं अनन्तसुख 4–ये चार अनन्त चतुष्टय शोभायमान थे। इस प्रकार चौंतीस अतिशय, आठ प्रतिहार्य एवं चार अनन्त चतुष्टय–इन कुल छियालीस गुणों के धारक वे श्रीमल्लिनाथ भगवान अत्यन्त शोभायमान जान पड़ते थे।

वे श्रीजिनेन्द्र भगवान समस्त भव्य जीवों को सन्तोष उपजाते एवं मेंघ के समान अपने दिव्य वचनरूपी अमृत से सबों को आनन्दित करते हुए समस्त पृथ्वी पर विहार करने लगे।।127-128।। जिस प्रकार सूर्य अपनी उग्र किरणों से अन्धकार को नष्ट करता है एवं समस्त जगत् को प्रकाशमान करता है, उसी प्रकार वे श्री जिनेन्द्ररूपी भगवान सूर्य भी अपने वचनरूपी किरणों से मिथ्या मोहरूपी अन्धकार का सर्वथा नाश कर संसार में तत्त्वों के स्वरूप का प्रकाश करने लगे।।129।। श्रीमल्लिनाथ भगवान के विशाख आदि अट्ठाईस गणधर थे, जो कि समस्त प्रकार की ऋद्धियों से शोभायमान थे एवं भगवान के चरणकमलों को प्रणाम करते थे।।130।। श्रीजिनेन्द्र भगवान के साथ में ग्यारह अंग चौदह पूर्व के धारी साढ़े पाँच सौ (550) मुनि थे, शिक्षक जाति के मुनि उन्तीस हजार थे। जो मुनि अवधिज्ञान के धारक थे, वे बाईस सौ (2200) प्रमाण थे। जितने प्रमाण ये अवधिज्ञानी थे, उतने ही प्रमाण अर्थात् बाईस सौ ही केवलज्ञानी मुनि थे, जो कि अपने केवलज्ञान से समस्त लोक-अलोक को स्पष्ट रूप से देखते थे। मिथ्यात्व को सर्वथा नष्ट

करने वाले परम सम्यग्दृष्टि वादी मुनि चौदह सौ (1400) थे। विक्रिया ऋद्धि के धारक उनतीस सौ (2900) थे। मन:पर्यज्ञानी मुनि श्रीजिनेन्द्र भगवान के समवशरण में साढ़े सत्रह सौ (1750) थे, जो कि श्रीजिनेन्द्र भगवान के परम भक्त थे एवं सूक्ष्मरूप से पदार्थों के देखने वाले थे। इस प्रकार ये समस्त विद्वान मुनि मिलकर चालीस हजार (40000) प्रमाण थे। ये मुनिगण मोहांधकार के सर्वथा नाश करने वाले थे एवं संसार की शोभा थे।।135।।

श्रीजिनेन्द्र भगवान की सभा में **बन्धुषेणा आर्यिका को** आदि लेकर पचपन हजार (55000) आर्यिकायें थीं, जो कि सम्यग्दृष्टि एवं मूलगुणों को धारण करने वाली थीं एवं श्रीजिनेन्द्र भगवान के चरण कमलों को प्रणाम करने वाली थीं।।136।। एक लाख (100000) श्रावक थे एवं तीन लाख (300000) श्राविकायें थीं, जो कि सम्यग्दृष्टि थे, श्रावकों के व्रतों के धारक थे एवं श्रीजिनेन्द्र भगवान की पूजा तथा भक्ति में सदा तत्पर थे।।।137।। तथा श्रीमल्लिनाथ भगवान की सभा में देव एवं उनकी देवियाँ असंख्यात थे, संख्यात पशु थे। ये समस्त सम्यग्दृष्टि एवं श्रावकों के व्रतों से युक्त थे तथा श्रीजिनेन्द्र भगवान के चरणों की पूजा करने वाले थे।।138।। इस रूप से वे श्री मल्लिनाथ केवली भगवान उपर्युक्त बारह गणों से परिवेष्टित थे, भव्यों को मोक्ष स्थान में ले जाने वाले थे, वास्तविक धर्म का मार्ग प्रकाशन करते थे। इस प्रकार आर्यखण्ड में रहने वाले समस्त देश एवं नगर आदि में उन्होंने छत्तीस दिन सौ वर्ष कम पचपन हजार वर्ष पर्यन्त विहार किया था। जब आयु के अन्त में केवल एक मास का समय शेष रहा गया, उस समय वे श्रीजिनेन्द्र भगवान सम्मेदशिखर पहाड़ पर जाकर विराजमान हो गये।।141।। वहाँ पर आकर श्रीजिनेन्द्र भगवान ने अपनी दिव्य-ध्वनि एवं योग को संकुचित कर दिया, निष्क्रिय हो गए एवं शेष चार अघातिया कर्म अर्थात् वेदनीय, आयु, नाम एवं गोत्र–इन चारों कर्मों को नष्ट करने के लिए 'प्रतिमायोग' धारण कर लिया तथा तब तक आयु का अन्त न हुआ, तब तक उसी स्थान पर पाँच हजार मुनियों के साथ अपनी आत्मा में 'सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती' नामक तीसरे शुक्लध्यान को धारण कर विराजमान हो गये।।142-143।। वहाँ विराजमान होकर मणिमयी दीपक के समान 'व्युपरत-क्रियानिवृत्ति' नामक चौथे शुक्लध्यान से श्रीजिनेन्द्र भगवान ने चारों अघातिया कर्मों का सर्वथा नाश कर दिया। 'अयोगकेवली' नाम के चौदहवें गुणस्थान में उन्होंने औदारिक, तैजस एवं कार्माण–इन तीनों शरीरों का सर्वथा नाश कर दिया एवं जिस प्रकार एरण्ड के बीज का स्वभाव बन्ध के नष्ट हो जाने पर ऊपर हो ही जाने का है, उसी प्रकार समस्त कर्मों से रहित आत्मा का भी ऊर्ध्वगमन स्वभाव होने से वे ज्ञानमूर्ति श्रीजिनेन्द्र भगवान फागुन सुदी पञ्चमी के दिन जब कि 'भरणी' नामक शुभ नक्षत्र था, पूर्व रात्रि के समय लोक के अगुभाग में जाकर विराजमान हो गये।।144-146।। सम्यकत्व आदि आठों गुणों को प्राप्त कर तथा सिद्ध होकर अनन्तकाल पर्यन्त वहाँ पर वे विराज गए एवं उस अलौकिक सुख का अनुभव करने लगे जो कि अन्तरहित अनन्त है, उपमारहित है, दिव्य है, समस्त प्रकार के क्लेशों से रहित है, स्वाधीन

है, विनाशरहित अविनाशी है, उत्कृष्ट है, इन्द्रियों से जायमान नहीं है, समस्त प्रकार की बाधाओं से रहित है तथा महान है।।147-48।।

जिस समय भगवान मुक्त हो गए, देवों को पता लग गया। भगवान की भक्ति के करने में सदा दत्तचित्त वे समस्त देव अपने-अपने इन्द्रों तथा परिवार के देवों के साथ शीघ्र ही उनकी **निर्वाणभूमि सम्मेदाचल** पर आ गये। श्रीजिनेन्द्र भगवान उसी शरीर से मोक्ष गए थे, इसलिए उनका वह शरीर साक्षात् मोक्ष का कारण होने से परम पवित्र था। अत: देवों ने बड़ी भक्ति से उनका शरीर अनेक प्रकार के रत्नों से शोभायमान पालकी में विराजमान कर दिया। महासुगन्धित उत्तमोत्तम द्रव्यों से उसे पूजा एवं अन्त में देवों ने शीश झुकाकर बड़े विनय से उसे नमस्कार किया।।149-151।। अग्निकुमार जाति के भवनवासी देवों के मुकुट से जायमान अग्नि से भगवान का शरीर दूसरी पर्याय को प्राप्त हो गया; अर्थत् भस्म हो गया। जिस समय वह दूसरी पर्याय को प्राप्त हो रहा था, उस समय उसकी उत्कट सुगन्धि से समस्त दिशायें सुगन्धित हो गई थीं। उनके शरीर की जो भस्म हुई थी, देवों ने यह कह कर कि ''जिस प्रकार यह अवस्था श्रीमल्लिनाथ भगवान की हुई है, उसी प्रकार हमारी भी हो''-उसे श्रीमल्लिनाथ भगवान के स्वरूप की प्राप्ति की अभिलाषा से अपने-अपने मस्तक तथा समस्त शरीर से लगा लिया। पुन: समस्त इन्द्रों ने मिल कर 'आनन्द' नामक नाटक किया, अन्त में अपना समस्त कार्य समाप्त कर वे श्री जिनेन्द्र भगवान के गुणों की प्रशंसा करते हुए अपने-अपने स्थानों पर चले गए।।152-154।।

जिन श्रीमल्लिनाथ भगवान ने पुण्य के तीव्र विपाक से पहले तो मनुष्य एवं देवगति के अन्दर होने वाले उत्तम सुख का सानन्द भोग किया। उसके बाद तीन लोक के इन्द्रों द्वारा बन्दनीक परम तीर्थंकर पदवी प्राप्त की; पश्चात् समस्त चारित्र को धारण कर ज्ञानावरण आदि समस्त कर्मों को नष्ट कर मोक्ष पद पाया, वे श्री मल्लिनाथ भगवान हमारी रक्षा करें।।115।। जो श्रीमल्लिनाथ भगवान पहले तो **'वैश्रवण'** नाम के राजा हुए, वहाँ पर **'रत्नत्रय'** नाम का पवित्र व्रत आचरण कर पीछे संयम ले उत्तम तपों की कृपा से दिव्य पाँच अनुत्तर विमानों में से चौथे **'अपराजित'** नाम के विमान में महान ऋद्धि के धारक अहमिन्द्र देव हुए, फिर वहाँ से चय कर मोक्षरूपी लक्ष्मी के भर्ता हुए, वे श्रीमल्लिनाथ भगवान सदा तुम्हारा कल्याण करें।।156।। बाल अवस्था में ही जिन श्रीमल्लिनाथ भगवान ने उत्तम तपरूपी तीक्ष्ण खड्ग से मोह आदि समस्त कर्मों का सर्वथा नाश कर अनन्त सुख प्रदान करने वाली मोक्षरूपी लक्ष्मी को प्राप्त किया, उन श्री मल्लिनाथ भगवान का इस श्री मल्लिनाथ पुराण में जो मैंने स्तवन एवं विनय किया है, वह उनकी विभूति की प्राप्ति की अभिलाषा से किया है। अब प्रार्थना यही है कि वे भगवान शीघ्र ही मुझे अपने समस्त गुणों को प्रदान करें एवं उन गुणों के विरोधी जितने भी कर्म हैं, वे मेरे सर्वथा क्षीण हो जायें।।157।। ग्रन्थकार **श्री सकलकीर्ति भट्टारक** अन्त में मंगल की कामना करते हुए कहते हैं-

'तीन लोक द्वारा पूज्य, समस्त तीर्थंकर शरीर के सम्बन्ध से रहित अशरीरी सिद्ध, दूसरों के प्रयोजन सिद्ध करने वाले परम विद्वान आचार्य, शास्त्रों के अर्थ निरूपण करने में चतुर तथा उत्कृष्ट उपाध्याय एवं धीर-वीर पूर्ण ध्यान के धरने वाले, घोर तपों के तपने वाले तथा मोक्ष प्राप्ति के लिए सदा प्रयत्नशील साधुगण जिनकी कि समस्त लोक स्तुति तथा विनय, वे तुम्हारे मंगल के कर्ता हों, तुम्हें सर्व प्रकार से मंगल प्रदान करें।।158।। समस्त प्रकार के रागभावों से रहित, धर्म का स्वरूप एवं संवेग भावना से परिपूर्ण अनुपम तथा उत्कृष्ट जो श्री मल्लिनाथ भगवान का चरित्र मुझ श्रीसकलकीर्ति भट्टारक के मुख से इस पृथ्वी पर प्रगट हुआ है, वह जब तक संसार में श्रेष्ठ धर्म (जैन धर्म) की सत्ता विद्यमान रहे, तब तक भव्य जीवों के साथ जयवन्त रहे।।159।।

इस संसार में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र स्वरूप जो 'रत्नत्रय' है—वह स्वर्ग एवं मोक्ष का प्रधान कारण हैं, समस्त पापों को सर्वथा नाश करने वाला है, धर्मरूपी अमृत का एक अद्वितीय समुद्र है, संसार के समस्त अनर्थों का निवारण करने वाला है, समस्त सुख की निधि है, भव्य लोगों के लिए मस्तक पर धारण करने के लिए एक अद्वितीय चूड़ामणि है, अनन्त गुणों का आकार है तथा समस्त कर्मों का नाश करने वाला है, वह रत्नत्रय मुझे भी प्राप्त हो एवं उसके फलस्वरूप सारे गुण मेरे अन्दर आकर प्रगट हों, इस अभिलाषा से मैं उस रत्नत्रय को रात-दिन मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ।।160।। इस पुराण के अन्दर जो रत्नत्रय व्रत की विधि बतलाई गई है, उस उत्तम विधि को जो विद्वान महानुभाव भक्तिपूर्वक करते हैं, वे उसके फलस्वरूप मनुष्य तथा देवलोक सम्बन्धी अनुपम सुख को प्राप्त करते हैं। उग्र तप से समस्त कर्मों को खपाकर श्रीमल्लिनाथ भगवान के समान तीनों लोक के जीवों से पूजित होते हैं, तत्पश्चात् सिद्धों से चारों ओर से भरी हुई मोक्षगति को प्राप्त करते हैं।।161।।

असमगुणकरंडों वंदितो विश्वनाथैर्भवभुजगसुमंत्रो दिव्यरत्नत्रयोऽस्तु।
सकलदुरितहान्यैः पूर्णरत्नत्रणाय मम परमसुमत्यै वंदिता संस्तुतश्च।।

संसार में यह दिव्य रत्नत्रय असाधारण गुणों का पिटारा है, तीनों लोक के नाथों से बन्दनीक है, संसाररूपी महाभयंकर भुजंग को वश में करने वाला उत्तम मन्त्र है। इस परम पावन रत्नत्रय की मैंने जो इस ग्रन्थ में वन्दना एवं स्तुति की है, वह समस्त पाप कर्मों के नाश के लिए, पूर्ण रत्नत्रय की प्राप्ति के लिए एवं मुझे परम सुमति की प्राप्ति हो, इस अभिलाषा से की है; इसलिए मेरी यह सविनय प्रार्थना है कि रत्नत्रय की स्तुति एवं वन्दना से मेरे समस्त दुष्कर्मों का सर्वथा नाश हो। मुझे पूर्ण रत्नत्रय का लाभ हो तथा मुझे परम सुमति की प्राप्ति हो।।162।।

इस श्री मल्लिनाथ पुराण के अन्दर समस्त **आठ सौ चौहत्तर श्लोक हैं,** जो कि श्री मल्लिनाथ भगवान का चरित्र वर्णन करने के कारण सारभूत हैं।।163।।

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति कृत संस्कृत भाषा में श्री मल्लिनाथ चरित्र की पं. गजाधरलाल जी न्यायतीर्थ विरचित हिन्दी वचनिका में भगवान श्री मल्लिनाथ का धर्मोपदेश और निर्वाण गमन का वर्णन करने वाला सातवाँ परिच्छेद समाप्त हुआ॥7॥

॥ ग्रन्थ समाप्त ॥

पुण्यार्जन

गुप्तदान, बड़ौत (बागपत) उ.प्र.

पू.पू. अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य
श्री 108 वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा रचित, संपादित साहित्य

प्रथमानुयोग शास्त्र

1. नंगानंग कुमार चरित्र
2. मौन व्रत कथा
3. प्रभंजन चरित्र
4. चारुदत्त चरित्र
5. सीता चरित्र
6. सप्त व्यसन चरित्र
7. वीर वर्द्धमान चरित्र (भाग-1,2)
8. देशभूषण कुलभूषण चरित्र
9. चित्रसैन पद्मावती चरित्र
10. सुदर्शन चरित्र
11. सुरसुन्दरी चरित्र
12. करकण्डु चरित्र
13. नागकुमार चरित्र
14. भद्रबाहु चरित्र
15. हनुमान चरित्र
16. महापुराण भाग-1, 2
17. श्री जम्बूस्वामी चरित्र
18. यशोधर चरित्र
19. व्रतकथा संग्रह
20. रामचरित भाग 1, 2
21. रामचरित (संयुक्त प्रकाशन)
22. आराधना कथा कोष भाग 1,2,3
23. शांतिपुराण भाग 1,2
24. सम्यक्त्व कौमुदी
25. धर्मामृत भाग 1,2
26. पुण्यास्रव कथा कोष भाग 1,2
27. पुराण सार संग्रह, भाग 1,2
28. सुलोचना चरित्र
29. गौतम स्वामी चरित्र
30. महिपाल चरित्र
31. जिनदत्त चरित्र
32. सुभौम चक्रवर्ती चरित्र
33. चेलना चरित्र
34. धन्यकुमार चरित्र
35. सुकुमाल चरित्र
36. क्षत्रचूड़ामणि (जीवंधर चरित्र)
37. चन्द्रप्रभ चरित्र
38. कोटिभट्ट श्रीपाल चरित्र
39. महावीर पुराण
40. वरांगचरित्र
41. पाण्डव पुराण
42. सुशीला उपन्यास
43. भरतेश वैभव
44. पार्श्वनाथ पुराण
45. त्रिवेणी
46. मल्लिनाथ पुराण

काव्य शास्त्र

1. चैन की जिंदगी
2. हीरों का खजना
3. कल्याणी
4. हाइकु
5. क्षरातीत अक्षर
6. न मैं चुप हूँ न गाता हूँ
7. मुक्तिदूत के मुक्तक

विधान/पूजन साहित्य

1. शांतिनाथ विधान
2. अजितनाथ विधान
3. णमोकार महार्चना
4. दुःखों से मुक्ति (सहस्रनाम विधान)
5. चन्द्रप्रभ विधान
6. श्रद्धा के अंकुर
7. कलिकुण्ड पार्श्वनाथ विधान
8. श्री जम्बूस्वामी विधान
9. श्री वासुपूज्य विधान
10. संभवनाथ विधान

11. निर्ग्रन्थ भक्ति
12. पूजा अर्चना

अन्य साहित्य

1. निज अवलोकन
2. धम्म रसायण
3. जिन श्रमण भारती
4. रयणसार
5. योगामृत भाग-1, 2
6. अध्यात्म तरंगिनी
7. योगसार भाग-1,2
8. भव्य प्रमोद
9. सदार्चन सुमन
10. तत्त्वार्थ सार
11. तनाव से मुक्ति
12. आराधना के सार
13. उपासकाध्ययन भाग-1,2
14. नीतिसार समुच्चय
15. सिन्दूर प्रकरण
16. चार श्रावकाचार
17. स्वप्न विचार
18. समाधि तंत्र
19. विद्यानंद उवाच
20. डॉक्टरों से मुक्ति
21. आ जाओ प्रकृति की गोद में
22. तत्त्वज्ञान तरंगिणी
23. सार समुच्चय
24. प्रबोध सार
25. भगवती आराधना
26. कुरल काव्य
27. प्रकृति समुत्कीर्तन
28. कर्म प्रकृति
29. व्रताधीश्वर रोहिणी व्रत
30. अन्तर्यात्रा
31. श्री शांतिनाथ भक्तामर सम्मेदशिखर विधान
32. अरिष्ट निवारक विधान संग्रह
33. पंचपरमेष्ठी विधान
34. तत्त्वभावना
35. सुख का सागर चालीसा संग्रह
36. प्रश्नोत्तर श्रावकाचार
37. भावत्रय फलदर्शी
38. तनाव से मुक्ति, भाग-1 (भजन)
39. इक दिन माटी में मिल जाना (भजन)
40. कर्म विपाक
41. सरस्वती आराधना
42. जैन वर्णमाला

प्रवचन साहित्य

1. सीप का मोती (महावीर जयंती)
2. चूको मत
3. जय बजरंग बली
4. शायद यही सच है
5. वसुनंदी उवाच (प्रवचनांश)
6. सम्राट चन्द्रगुप्त
7. जीवन का सहारा
8. तैयारी जीत की
9. श्रुत निर्झरी
10. उत्तम क्षमा
11. मान महा विष रूप
12. तप चाहें सुर साय
13. जिस बिना नहीं जिनराज सीजें
14. निज हाथ दीजे साथ लीजे
15. परिग्रह चिंता दुःख ही मानो
16. रंचक दगा बहुत दुःख दानी
17. लोभ पाप को पाप बखानो
18. सत्यवादी जग में सुखी
19. उत्तम ब्रह्मचर्य
20. नारी का धवल पक्ष
21. आईना मेरे देश का
22. दशामृत
23. न पिटना बुरा है न मिटना
24. गुरुत्तं 1,2,3,4,5,
25. मीठे प्रवचन, 1,2,3,4
26. बोधि वृक्ष

27. खोज क्यों रोज रोज
28. धर्म की महिमा
29. सफलता के सूत्र
30. आज का निर्णय (प्रवचनांश)
31. गुरु कृपा
32. गुरुवर तेरा साथ (प्रवचनांश)
33. स्वाति की बूंद
34. गागर में सागर (प्रवचनांश)
35. खुशी के आंसू

अनुवादित साहित्य

1. वसु ऋद्धि
2. तत्त्वोपदेश (छहढाला)
3. दिव्य लक्ष्य
4. पंचरत्न
5. गुणरत्नाकर (रत्नकरण्डक श्रावकाचार)
6. तत्त्वार्थ सूत्र
7. विषापहार स्तोत्र
8. मूलाचार प्रदीप
9. पुरुषार्थ सिद्धियुपाय
10. जिनकल्पि सूत्रम

रचित साहित्य

1. हमारे आदर्श
2. आहार दान
3. सर्वोदयी नैतिक धर्म
4. कलम पट्टी बुद्धिका
5. धर्म संस्कार
6. णंदिणंद सुत्तं
7. जिन सिद्धान्त महोदधि
8. सद्गुरु की सीख
9. धम्मस्स सुत्ति सग्गहो
10. आधुनिक समस्याओं के प्रामाणिक समाधान
11. धर्म बोध संस्कार 1,2,3,4
12. संस्कारादित्य
13. दान के अचिन्त्य प्रभाव
14. रट्टसंति महाजग्गो

प्रेस में

1. तच्च सारो
2. विणय सारो
3. रदण सारो
4. नौ निधि
5. धर्म संस्कार भाग 2
6. सुभाषित रत्न संदोह

प.पू. आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज के जीवन चरित्र पर आधारित साहित्य

1. समझाया रविन्दु न माना
2. दृष्टि दृश्यों के पार
3. पग वंदन
4. अक्षर शिल्पी
5. वसुनंदी प्रश्नोत्तरी (प्रेस में)